गोम्मटसार कर्मकांड

अनुक्रमणिका

1-000) मंगलाचरण

प्रकृति-समुत्कीर्तन

1-002) जीव-कर्म का अनादि संबंध
1-003) जीव का कर्म ग्रहण
1-003) आठ कर्म के कथन में क्रम का कारण
1-021) आठों कर्मों के स्वभाव का उदाहरण
1-021) आठों कर्मों के उत्तर भेदों की संख्या
1-023) स्त्यान-त्रिक का स्वभाव
1-023) दर्शन-मोहनीय के भेद और उनका कारण
1-027) शरीर और उसके भंग
1-027) उष्ण, आतप और उद्योत कर्म
1-034) बंध / उदय / सत्व योग्य प्रकृतियों की संख्या
1-034) सर्वघाती-देशघाती कर्म
1-041-44) प्रशस्त-अप्रशस्त कर्म
1-041-44) कषायों का स्वभाव
1-047-51) जीव-पुद्गल विपाकी प्रकृतियाँ
1-047-51) निक्षेप-प्रकरण

बंध-उदय-सत्त्व

2-001) मंगलाचरण
2-001) मूल-कर्म स्थितिबंध
2-042-047) उत्तर-प्रकृतियों में स्थितिबंध
2-042-047) नाद को सुनने से आश्चर्य नही करना चाहिए
2-059) आबाधा
2-059) अजघन्यादि स्थिति के भेदों में सादि आदि भेद
2-076-077) अनुभागबंध
2-076-077) अजघन्य, अनुत्कृष्ट, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव अनुभाग
2-095) अनुभाग-बंध में शक्ति-भेद के उदाहरण
2-095) पुण्य-पाप के भेद
2-099) कर्मों मे पुण्यरूप-पापरूप अनुभाग

प्रदेश बंध

2-100-101) कर्मरूप पुद्गलों का आत्मा के प्रदेशों के साथ संबंध होना
2-102) क्षेत्र में पुद्गल द्रव्य का परिमाण
2-102) योग्य और अयोग्य द्रव्य का परिमाण
2-104) सादि और अनादि द्रव्य का परिमाण
2-104) योग्य और अयोग्य सादि / अनादि द्रव्य का परिमाण
2-106) समयप्रबद्ध में किस प्रकार के परमाणुओं का ग्रहण
2-106) समयप्रबद्ध
2-111) उत्तर प्रकृतियों में बँटवारे का क्रम
2-111) मतिज्ञानावरणादि 25 देशघाति प्रकृतियों का गुणहानि क्रम से विभाजन
2-115) वेदनीय, आयु, गोत्र उत्तर प्रकृतियों में विभाग
2-115) मोहनीय कर्म की रचना
2-120) नामकर्म की रचना
2-120) मूल कर्म में उत्कृष्टादि प्रदेशबंध के सादि आदि भेद
2-122-123) उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्टादि प्रदेशबंध के सादि आदि भेद

2-122-123) प्रदेशबंध की उत्कृष्ट सामग्री
2-125) मूल प्रकृतियों में उत्कृष्ट प्रदेशबंध
2-125) उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्ट प्रदेशबंध के गुणस्थान
2-127-129) जघन्य प्रदेशबंध
2-127-129) योगस्थान
2-131-134) योगस्थान
2-131-134) प्रत्येक योगस्थान में पाँच भेद
2-139) योगस्थान में वर्गणादि का प्रमाण
2-139) योगस्थान में गुणहानि रचना का वर्णन
2-143) अपूर्व स्पर्द्धक
2-143) 84 योगस्थान
2-154) योगस्थान का निरंतर प्रवर्तन काल
2-154) योग में काल
2-156-158) योगस्थानों में त्रस जीवों का प्रमाण

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!

श्रीमद्-नेमिचंद्र-आचार्यदेव-प्रणीत

श्री

गोम्मटसार-कर्मकांड

मूल प्राकृत गाथा,

आभार :

!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥

अर्थ : बिन्दुसहित ॐकार को योगीजन सर्वदा ध्याते हैं, मनोवाँछित वस्तु को देने वाले और मोक्ष को देने वाले ॐकार को बार बार नमस्कार हो । निरंतर दिव्य-ध्वनि-रूपी मेघ-समूह संसार के समस्त पापरूपी मैल को धोनेवाली है मुनियों द्वारा उपासित भवसागर से तिरानेवाली ऐसी जिनवाणी हमारे पापों को नष्ट करो । जिसने अज्ञान-रूपी अंधेरे से अंधे हुये जीवों के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से खोल दिये हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार हो । परम गुरु को नमस्कार हो, परम्परागत आचार्य गुरु को नमस्कार हो ।

॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-गोम्मटसार-कर्मकांड नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तार: श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तार: श्री-गणधर-देवा: प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य आचार्य श्री- श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीदेव विरचितं ॥

(समस्त पापों का नाश करनेवाला, कल्याणों का बढ़ानेवाला, धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला, भव्यजीवों के मन को प्रतिबुद्ध-सचेत करनेवाला यह शास्त्र श्री गोम्मटसार-कर्मकांड नाम का है, मूल-ग्रन्थ के रचयिता सर्वज्ञ-देव हैं, उनके बाद ग्रन्थ को गूंथनेवाले गणधर-देव हैं, प्रति-गणधर देव हैं उनके वचनों के अनुसार लेकर आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती द्वारा रचित यह ग्रन्थ है । सभी श्रोता पूर्ण सावधानी पूर्वक सुनें ।)

॥ श्रोतार: सावधानतया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

(देव वंदना)

सुध्यान में लवलीन हो जब, घातिया चारों हने ।
सर्वज्ञ बोध विरागता को, पा लिया तब आपने ॥
उपदेश दे हितकर अनेकों, भव्य निज सम कर लिये ।
रविज्ञान किरण प्रकाश डालो, वीर! मेरे भी हिये ॥

(शास्त्र वंदना)

स्याद्वाद, नय, षट् द्रव्य, गुण, पर्याय और प्रमाण का ।

जड़कर्म चेतन बंध का, अरु कर्म के अवसान का ॥
कहकर स्वरूप यथार्थ जग का, जो किया उपकार है ।
उसके लिये जिनवाणी माँ को, वंदना शत बार है ॥
(गुरु वंदना)
नि:संग हैं जो वायुसम, निर्लेप हैं आकाश से ।
निज आत्म में ही विहरते, जीवन न पर की आस से ॥
जिनके निकट सिंहादि पशु भी, भूल जाते क्रूरता ।
उन दिव्य गुरुओं की अहो! कैसी अलौकिक शूरता ॥

मंगलाचरण

पणमिय सिरसा णेमिं, गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मत्तरयणणिलयं, पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥1॥

अन्वयार्थ : [गुणरयणविभूसणं] ज्ञानादि गुणरूपी रत्नों के आभूषणों को धारण करने वाले, [महावीरं] मोक्षरूपी लक्ष्मी को देने वाले, [सम्मत्तरयणणिलयं] सम्यक्त्वरूपी रत्न के स्थान, [पणमिय सिरसा णेमिं] ऐसे श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर को मस्तक नवाकर, [पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं] प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार को कहता हूँ ॥१॥

जीव-कर्म का अनादि संबंध

पयडी सील सहावो, जीवंगाणं अणाइसंबंधो ।
कणयोवले मलं वा, ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥2॥

अन्वयार्थ : [पयडी सील सहावो] प्रकृति, शील, स्वभाव (ये एकार्थवाची हैं) का [जीवंगाणं अणाइसंबंधो] जीव के साथ अनादि संबंध है [कणयोवले मलं वा] स्वर्ण-पाषाण के समान, [ताणत्थित्तं सयं सिद्धं] यह संबंध स्वयं-सिद्ध है (अनादिकाल से है, किसी का किया हुआ नहीं है) ॥२॥

जीव का कर्म ग्रहण

देहोदयेण सहिओ, जीवो आहरदि कम्म णोकम्मं ।
पडिसमयं सव्वंगं, तत्तायसपिंडओव्व जलं ॥3॥

अन्वयार्थ : [देहोदयेण सहिओ] कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से, [कम्म णोकम्मं] कर्म और नोकर्म को [पडिसमयं सव्वंगं] प्रति-समय, सर्व प्रदेशों से [जीवो आहरदि] जीव ग्रहण करता है, [तत्तायसपिंडओव्व जलं] जैसे तप्तायमान लोहा जल को सब ओर से खींचता है ॥३॥

सिद्धाणंतिमभागं, अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव ।
समयपबद्धं बंधदि, जोगवसादो दु विसरित्थं ॥4॥

अन्वयार्थ : यह आत्मा, सिद्धजीवराशि के अनंतवें भाग और अभव्य जीवराशि से अनंतगुणे समयप्रबद्ध (एक समय में बंधने वाले परमाणुसमूह) को बांधता है । इतनी विशेषता है कि मन, वचन, काय की प्रवृत्तिरूप योगों की विशेषता से (कमती बढ़ती होने से) कभी थोड़े और कभी बहत परमाणुओं का भी बंध करता है ।

आठ कर्म के कथन में क्रम का कारण

घादीवि अघादिं वा, णिस्सेसं घादणे असक्कादो ।
णामतियणिमित्तादो, विग्घं पडिदं अघादि चरिमम्हि ॥17॥

अन्वयार्थ : [घादीवि अघादिं वा] (अन्तरायकर्म) घातिया होते हुए भी अघातिया कर्मवत् है, [णिस्सेसं घादणे असक्कादो] समस्त जीव के गुण घातने को समर्थ नहीं है [णामतियणिमित्तादो] नाम, गोत्र, वेदनीय इन तीन कर्म के निमित्त से ही इसका व्यापार है, [विग्घं पडिदं

अघादि चरिमम्हि] इसी कारण अघातिया के भी बाद अन्त में अन्तराय कर्म कहा है ॥१७॥

आउबलेण अवट्ठिदि, भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु ।
भवमस्सिय णीचुच्चं, इदि गोदं णामपुव्वं तु ॥18॥

अन्वयार्थ : [आउबलेण अवट्ठिदि] आयु के बल से भव की अवस्थिति होती है, [भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु] भव होने पर ही शरीर वा चतुर्गतिरूप स्थिति होती है [भवमस्सिय णीचुच्चं] भव का आश्रय करके नीच-उच्चपना होता है [इदि गोदं णामपुव्वं तु] इसलिए नाम के पश्चात् गोत्र कर्म कहा ॥१८॥

घादिंव वेयणीयं, मोहस्स बलेण घाददे जीवं ।
इदि घादीणं मज्झे, मोहस्सादिम्हि पढिदं तु ॥19॥

अन्वयार्थ : [घादिंव वेयणीयं] घातिया कर्मवत् वेदनीय कर्म [मोहस्स बलेण घाददे जीवं] मोह के बल से जीव का घात करता है [इदि घादीणं मज्झे] इसलिए घातिया कर्मों के बीच [मोहस्सादिम्हि पढिदं तु] मोह कर्म के पहले वेदनीय को कहा है ॥१९॥

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं ॥20॥

अन्वयार्थ : [णाणस्स दंसणस्स य आवरणं] ज्ञानावरण, दर्शनावरण [वेयणीयमोहणियं] वेदनीय, मोहनीय, [आउगणामं] आयु, नाम, [गोदंतरायमिदि] गोत्र और अन्तराय - इस प्रकार जो - [पढिदमिदि सिद्धं] पाठ का क्रम है वह पहले पाठ की तरह ही सिद्ध हुआ ॥२०॥

आठों कर्मों के स्वभाव का उदाहरण

पडपडिहारसिमज्जा-हलिचित्तकुलालभंडयारीणं ।
जह एदेसिं भावा, तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ॥21॥

अन्वयार्थ : [पड] पट (देवता के मुख पर पड़ा वस्त्र), [पडिहार] प्रतीहारी (राजद्वार पर बैठा हुआ द्वारपाल), [असि]-असि (शहद लपेटी तलवार की धार), [मज्जा] शराब, [हलि] काठ का यंत्र--खोड़ा, [चित्त] चित्रकार, [कुलाल] कुंभकार (कुम्हार), [भंडयारीणं] भंडारी (खजांची) [जह एदेसिं भावा] इन आठों के जैसे-जैसे अपने-अपने कार्य करने के भाव होते हैं [तहवि य कम्मा मुणेयव्वा] उसी तरह क्रम से कर्मों के भी स्वभाव समझना ॥२१॥

आठों कर्मों के उत्तर भेदों की संख्या

पंच णव दोण्णि अट्ठा-वीसं चउरो कमेण तेणउदी ।
तेउत्तरं सयं वा, दुगपणगं उत्तरा होंति ॥22॥

अन्वयार्थ : [पंच णव दोण्णि अट्ठा-वीसं] पाँच, नौ, दो, अट्ठाइस [चउरो कमेण तेणउदी तेउत्तरं सयं वा] चार, तिरानवे अथवा एक सौ तीन, [दुगपणगं] दो और पाँच [उत्तरा] उत्तर प्रकृतियाँ [होंति] होतीं हैं ॥२२॥

स्त्यान-त्रिक का स्वभाव

थीणुदयेणुट्ठविदे, सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य ।
णिद्दाणिद्दुदयेण य, ण दिट्ठिमुग्घाडिदुं सक्को ॥23॥

अन्वयार्थ : [थीणुदयेणुट्ठविदे] स्त्यानगृद्धि के उदय में [सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य] सोता हुआ भी काम कर लेता है, बोलता है [णिद्दाणिद्दुदयेण य] और निद्रा-निद्रा के उदय में [ण दिट्ठिमुग्घाडिदुं सक्को] आँख खोलने में समर्थ नहीं होता ॥२३॥

दर्शन-मोहनीय के भेद और उनका कारण

पयलापयलुदयेण य, वहेदि लाला चलंति अंगाइं ।
णिद्दुदये गच्छंतो, ठाइ पुणो वइसइ पडेइ ॥24॥

अन्वयार्थ : [पयलापयलुदयेण य] प्रचलाप्रचला के उदय में [वहेदि लाला चलंति अंगाइं] मुख से लार बहती है, हाथ-पैर आदि अंग

चलरूप होते हैं [णिद्दुदये] निद्रा के उदय में [गच्छंतो ठाइ पुणो वइसइ पडेइ] चलता हुआ खड़ा हो जाता है, खड़ा हुआ बैठ जाता है या गिर पड़ता है ॥२४॥

पयलुदयेण य जीवो, ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि ।

ईसं ईसं जाणदि, मुहुं मुहुं सोवदे मंदं ॥25॥

अन्वयार्थ : [पयलुदयेण य जीवो] प्रचला के उदय में जीव [ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि] थोड़े नेत्रों को उघाढकर सोता है [ईसं ईसं जाणदि] थोड़ा-थोड़ा जानता है, [मुहुं मुहुं सोवदे मंदं] कभी जागता है कभी सोता है ॥२५॥

जंतेण कोद्दवं वा, पढमुवसमसम्मभावजंतेण ।

मिच्छं दव्वं तु तिधा, असंखगुणहीणदव्वकमा ॥26॥

अन्वयार्थ : [जंतेण कोद्दवं वा] घटी यंत्र द्वारा कौदों के (तंदुल, कण/पत्थर, तुष/छिलका ये तीन अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं) समान [पढमुवसमसम्मभावजंतेण] प्रथमोपशम सम्यक्त्व रूप भाव-यंत्र द्वारा [मिच्छं दव्वं तु तिधा] मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य [असंखगुणहीणदव्वकमा] असंख्यात-असंख्यात गुणा हीन द्रव्य के अनुक्रम से तीन प्रकार का (मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व) हो जाता है ॥२६॥

शरीर और उसके भंग

तेजाकम्मेहिं तिए, तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं ।

कयसंजोगे चदुचदु-चदुदुग एक्कं च पयडीओ ॥27॥

अन्वयार्थ : [तेजाकम्मेहिं तिए] तेजस-कार्माण का तीन (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक) के संयोग से और [तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं] तेजस और कार्माण के [कयसंजोगे] संयोग से [चदुचदु-चदुदुग एक्कं च पयडीओ] चार-चार और एक-एक भंग होते हैं ॥२७॥

प्रधान शरीर मिश्रित शरीर भंग औदारिक औ.-औ. औ.-ते. औ.-का. औ.-ते.-का.

4 वैक्रियिक वै.-वै. वै.-ते. वै.-का. वै.-ते.-का. 4 आहारक आ.-आ. आ.-ते. आ.-का. आ.-ते.-का. 4 तेजस ते.-ते. ते.-का. 2 कार्माण का.-का. 1

णलया बाहू य तहा, णियंबपुट्ठी उरो य सीसो य ।

अट्ठेव हु अंगाइं, देहे सेसा उवंगाइं ॥28॥

अन्वयार्थ : [णलया] दो पैर [बाहू य तहा] दो हाथ [णियंब] नितंभ (पुट्ठा) [पुट्ठी] पीठ [उरो य] और हृदय [सीसो] और मस्तक [अट्ठेव हु अंगाइं देहे] देह में ये आठ अंग होते हैं [सेसा उवंगाइं] शेष सब उपांग हैं ॥२८॥

उष्ण, आतप और उद्योत कर्म

सेवट्टेण य गम्मइ, आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति ।

तत्तो दुजुगलजुगले, खीलियणारायणद्धोत्ति ॥29॥

णवगेविज्जाणुद्दिस-णुत्तरवासीसु जांति ते णियमा ।

तिदुगेगे संघडणे, णारायणमादिगे कमसो ॥30॥

सण्णी छस्संहडणो, वज्जदि मेघं तदो परं चावि ।

सेवट्टादीरहिदो, पणपणचदुरेगसंहडणो ॥31॥

अन्वयार्थ : [सेवट्टेण य गम्मइ] सृपाटिकासंहनन वाले जीव यदि देव गति में उत्पन्न हों तो [आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति] पहले सौधर्मयुगल से चौथे लांतवयुगल तक चार युगलों में उत्पन्न होते हैं । [तत्तो दुजुगलजुगले] फिर चौथे युगल के बाद दो-दो युगलों में क्रम से [खीलियणारायणद्धोत्ति] कीलित संहनन वाले और अर्द्धनाराच संहनन वाले जीव जन्म धारण करते हैं ॥२९॥

[तिदुगेगे संघडणे] तीसरे दूसरे और पहले संहनन [णारायणमादिगे कमसो] नाराच आदि तीन से जीव क्रम से [णवगेविज्ज] नवग्रैवेयक पर्यंत [अणुद्दिस] नव अनुदिश और [अणुत्तरवासीसु] अनुत्तर विमान पर्यंत [जांति ते णियमा] वे नियम से जन्म ले सकते हैं ॥३०॥

[सण्णी छस्संहडणो] छह संहनन वाले संज्ञी जीव [वज्जदि मेघं तदो परं चावि] यदि नरक में जन्म लेवें तो मेघा (तीसरे नरक) पर्यन्त जाते हैं ।
[सेवट्टादीरहिदो] सृपाटिका-संहनन रहित पाँच संहनन वाले अरिष्टा नामक पाँचवे नरक की पृथ्वी तक उपजते हैं ।
[पणपणचदुरेगसंहडणो] चार संहनन (अर्द्धनाराच पर्यंत) वाले मघवी (छठी पृथिवी) तक और वज्रऋषभनाराच-संहनन वाले माघवी (सातवीं पृथिवी) तक उत्पन्न होते हैं ॥३१॥
किस संहनन से मरकर किस गति तक उत्पन्न होना सम्भव हैसंहननप्राप्तव्य स्वर्गप्राप्तव्य नरकवज्रऋषभनाराचपंच अनुत्तर७ वें नरकवज्रनाराचनव अनुदिश६ नरक तकनाराचनव ग्रैवेयक तकअर्धनाराचअच्युत तककीलितसहस्रार तक५ वें नरक तकअसंप्राप्तासृपाटिकासौधर्म से कापिष्ठ तक३ नरक तकगो.क./मू./२९-३१/२४ और गो.क./जी.प्र./५४९/७२५/१४
अंतिमतिगसंघडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं ।
आदिमतिगसंहडणं, णत्थि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥32॥
अन्वयार्थ : [कम्मभूमिमहिलाणं] कर्मभूमि की स्त्रियों के [अंतिमतिगसंघडणस्सुदओ] अन्त के तीन (अर्द्धनाराचादि) संहननों का ही उदय होता है; [पुण] और [आदिमतिगसंहडणं] आदि के तीन (वज्रऋषभनाराचादि) संहनन [णत्थि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं] (कर्मभूमि की स्त्रियों के) नहीं होते - ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥३२॥
मूलुण्हपहा अग्गी, आदावो होदि उण्हसहियपहा ।
आइच्चे तेरिच्छे, उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥33॥
अन्वयार्थ : [मूलुण्हपहा अग्गी] अग्नि के मूल और प्रभा [आदावो होदि उण्हसहियपहा] दोनों ही उष्ण रहते हैं । इस कारण उसके स्पर्श नामकर्म के भेद उष्णस्पर्श नामकर्म का उदय जानना । [आइच्चे तेरिच्छे] जिसकी केवल प्रभा (किरणों का फैलाव) ही उष्ण हो उसको आतप कहते हैं । इस आतपनामकर्म का उदय सूर्य के बिम्ब (विमान) में उत्पन्न हुए बादरपर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों के होता है । [उण्हूणपहा हु उज्जोओ] उष्णता रहित प्रभा हो उसको नियम से उद्योत जानना ॥३३॥

बंध / उदय / सत्व योग्य प्रकृतियों की संख्या

देहे अविणाभावी, बंधणसंघाद इदि अबंधुदया ।
वण्णचउक्केऽभिण्णे, गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥34॥
अन्वयार्थ : शरीर नामकर्म के साथ अपना-अपना बंधन और अपना-अपना संघात; ये दोनों अविनाभावी हैं । अर्थात् ये दोनों शरीर के बिना नहीं हो सकते । इस कारण पाँच बंधन और पाँच संघात ये 10 प्रकृतियाँ बन्ध और उदय अवस्था में अभेद विवक्षा से जुदी नहीं गिनी जातीं, शरीर नामक प्रकृति में ही शामिल हो जाती हैं । वर्ण, गंध, रस, स्पर्श — इन चार में ही इनके बीस भेद शामिल हो जाते हैं । इस कारण अभेद की अपेक्षा से इनके भी बन्ध और उदय अवस्था में चार ही भेद माने हैं ॥३४॥
पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णि य पंच य भणिया, एदाओ बंधपयडीओ ॥35॥
अन्वयार्थ : ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 26, आयुकर्म की 4, नामकर्म की 67, गोत्रकर्म की 2, अंतरायकर्म की 5 — ये सब बंध होने योग्य प्रकृतियाँ हैं क्योंकि मोहनीय में सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति बन्ध में नहीं है यह पहले कह चुके हैं ।
नामकर्म में पहले गाथा में 10+16=26 प्रकृतियाँ अभेद विवक्षा से बंध अवस्था में नहीं है ऐसा कह आये हैं । सो 93 में से 26 कम करने पर (93–26=67) 67 बाकी रह जाती हैं ॥ 35 ॥
पंच णव दोण्णि अट्ठा-वीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णि य पंच य भणिया, एदाओ उदयपयडीओ ॥36॥
अन्वयार्थ : [पंच णव दोण्णि अट्ठा-वीसं] पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, [चउरो कमेण सत्तट्ठी दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ उदयपयडीओ] चार, सड़सठ, दो और पाँच - ये सब उदय प्रकृतियाँ हैं (मोहनीय की बंध-योग्य छब्बीस प्रकृतियों में सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति -

ये दो भी उदय अवस्था में शामिल करने से अट्ठाईस प्रकृतियाँ हो जाती हैं) ॥३६॥

भेदे छादालसयं, इदरे बंधे हवंति वीससयं ।
भेदे सव्वे उदये, बावीससयं अभेदम्हि ॥37॥

अन्वयार्थ : बन्ध अवस्था में, भेदविवक्षा से 146 प्रकृतियाँ हैं; क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति ये दोनों बंध-योग्य नहीं हैं और अभेद की विवक्षा से 120 प्रकृतियाँ कहीं हैं क्योंकि 26 प्रकृतियाँ दूसरे भेदों में शामिल कर दी गई हैं ।

उदय अवस्था में, भेदविवक्षा से सब 148 प्रकृतियाँ हैं क्योंकि मोहनीय कर्म की पूर्वोक्त दो प्रकृतियाँ भी यहाँ शामिल हो जाती हैं । तथा अभेद विवक्षा से 122 प्रकृतियाँ कही हैं क्योंकि 26 भेद दूसरे भेदों में गर्भित हो जाते हैं

पंच णव दोण्णि अट्ठा-वीसं चउरो कमेण तेणउदी ।
दोण्णि य पंच य भणिया, एदाओ सत्तपयडीओ ॥38॥

अन्वयार्थ : पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवे, दो और पाँच -- इस तरह सब 148 सत्तारूप प्रकृतियाँ कही हैं ॥३८॥

सर्वघाती-देशघाती कर्म

केवलणाणावरणं, दंसणछक्कं कसायबारसयं ।
मिच्छं च सव्वघादी, सम्मामिच्छं अबंधम्मि ॥39॥
णाणावरणचउक्कं, तिदंसणं सम्मगं च संजलणं ।
णव णोकसाय विग्घं, छव्वीसा देसघादीओ ॥40॥

अन्वयार्थ : केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और पाँच निद्रा इस प्रकार दर्शनावरण के छः भेद, तथा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ -- ये बारह कषाय और मिथ्यात्व मोहनीय -- सब मिलकर 20 प्रकृतियाँ सर्वघाती हैं । तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति भी बन्ध-रहित अवस्था में (अर्थात् उदय और सत्ता में) सर्वघाती है । परन्तु यह सर्वघाती जुदी ही जाति की है ॥३९॥

ज्ञानावरण के चार भेद (केवलज्ञानावरण को छोड़कर), दर्शनावरण के तीन भेद (पूर्व कथित छः भेदों के सिवाय), सम्यक्त्व प्रकृति, संज्वलन क्रोधादि चार, हास्यादि नोकषाय नव और अंतराय के पाँच भेद -- इस तरह छब्बीस देशघाती कर्म हैं (क्योंकि इनके उदय होने पर भी जीव का गुण प्रगट रहता है) ॥४०॥

कर्मों में विभाजन सर्वघाति देशघाति 21 (केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, पाँच निद्रा, अनंतानुबंधी-4, अप्रत्याख्यानावरण-4, प्रत्याख्यानावरण-4, मिथ्यात्व) + सम्यग्मिथ्यात्व* 26 (ज्ञानावरण-4 [मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्यय], दर्शनावरण-3 [चक्षु-अचक्षु-अवधि], सम्यक्त्वप्रकृति, संज्वलन-4, नोकषाय-9, अंतराय-5) घातिया कर्मों में ही सर्व-घाति और देश-घाति के विकल्प हैं

प्रशस्त-अप्रशस्त कर्म

सादं तिण्णेवाऊ, उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी ।
देहा बंधणसंघा-दंगोवंगाइं वण्णचओ ॥41॥
समचउरवज्जरिसह, उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं ।
तसबारसट्ठसट्ठी, बादालमभेददो सत्था ॥42॥
घादी णीचमसादं, णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी ।
संठाणसंहदीणं, चदुपणपणगं च वण्णचओ ॥43॥
उवघादमसग्गमणं, थावरदसयं च अप्पसत्था हु ।
बंधुदयं पडि भेदे, अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे ॥44॥

अन्वयार्थ : सातावेदनीय 1, तिर्यंच, मनुष्य, देवायु 3, उच्चगोत्र 1, मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, देवगति, देव-गत्यानुपूर्वी, पंचइन्द्रिय-जाति, शरीर 5, बंधन 5, संघात 5, अंगोपांग 3, शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इन चार के 20 भेद, समचतुरस्र-संस्थान, वज्रऋषभनाराच-संहनन, उपघात के बिना अगुरुलघु आदि छह, प्रशस्त-विहायोगति और त्रस आदिक बारह -- इस प्रकार 68 प्रकृतियाँ भेद-विवक्षा से

प्रशस्त (पुण्यरूप) कही हैं । और अभेद-विवक्षा से 42 ही पुण्य प्रकृतियाँ हैं क्योंकि पहले कहे अनुसार 26 कम हो जाती हैं ॥४१-४२॥
चारों घातिया कर्मों की प्रकृतियाँ, नीचगोत्र, असाता-वेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरक-गत्यानुपूर्वी, तिर्यंच गति, तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि 4 जाति, समचतुरस्र को छोड़कर 5 संस्थान, पहिले संहनन के सिवाय 5 संहनन, अशुभ वर्ण रस गंध स्पर्श ये चार अथवा इनके बीस भेद, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और स्थावर आदिक दस -- ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ हैं । ये भेद-विवक्षा से बन्धरूप 98 हैं और उदयरूप 100 हैं । तथा अभेद-विवक्षा से बन्धयोग्य 82 और उदयरूप 84 प्रकृतियाँ हैं क्योंकि वर्णादिक चार के सोलह भेद कम हो जाते हैं ॥४३-४४॥
कर्मों में विभाजन प्रशस्त अप्रशस्त 42 (सातावेदनीय, 3 आयु [तिर्यंच-मनुष्य-देव], उच्चगोत्र, मनुष्य-द्विक, देव-द्विक, पंचेन्द्रिय जाति, 5-शरीर, 3-अंगोपांग, 4-वर्ण-चतुष्क, समचतुरस्र-संस्थान, वज्रऋषभनाराच-संहनन, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, पर्याप्तक, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर,आदेय, यशस्कीर्ति, त्रस, बादर, निर्माण, तीर्थंकर) 82 (शेष बंध-योग्य प्रकृतियाँ) घातिया कर्मों की सभी प्रकृतियाँ अप्रशस्त हैं

कषायों का स्वभाव

पढमादिया कसाया, सम्मत्तं देससयलचारित्तं ।
जहखादं घादंति य, गुणणामा होंति सेसावि ॥45॥
अन्वयार्थ : [पढमादिया कसाया] पहली अनन्तानुबन्धी आदिक (अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन ये चार) कषाय, क्रम से [सम्मत्तं] सम्यक्त्व को, [देससयलचारित्तं] देशचारित्र को, सकलचारित्र को [य जहखादं] और यथाख्यात चारित्र को [घादंति] घातती हैं (सम्यक्त्व आदि को प्रकट नहीं होने देती) । [गुणणामा होंति सेसावि] इनके सिवाय दूसरी जो प्रकृतियाँ हैं वे भी सार्थक नाम वाली ही हैं ॥४५॥
अंतोमुहुत्त पक्खं, छम्मासं संखऽसंखणंतभवं ।
संजलणमादियाणं, वासणकालो दु णियमेण ॥46॥
अन्वयार्थ : [संजलणमादियाणं] संज्वलन आदि (संज्वलन, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान, और अनन्तानुबंधी) चार कषायों की [वासणकालो] *वासनाकाल क्रम से [अंतोमुहुत्त] अंतर्मुहूर्त, [पक्खं] पक्ष (पंद्रह दिन), [छम्मासं] छ: महीना और [संखऽसंखणंतभवं] संख्यात, असंख्यात तथा अनंतभव हैं, [दु णियमेण] ऐसा निश्चय कर समझना ॥४६॥*वासनाकाल :- उदय का अभाव होने पर भी कषायों का संस्कार जितने काल रहे

जीव-पुद्गल विपाकी प्रकृतियाँ

देहादी फासंता, पण्णासा णिमिणतावजुगलं च ।
थिरसुहपत्तेयदुगं, अगुरुतियं पोग्गलविवाई ॥47॥
आऊणि भवविवाई, खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ ।
अट्ठत्तरि अवसेसा, जीवविवाई मुणेयव्वा ॥48॥
वेदणियगोदघादी-णेकावण्णं तु णामपयडीणं ।
सत्तावीसं चेदे, अट्ठत्तरि जीव विवाईओ ॥49॥
तित्थयरं उस्सासं, बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं ।
जसतसविहायसुभगदु, चउगइ पणजाइ सगवीसं ॥50॥
गदि जादी उस्सासं, विहायगदि तसतियाण जुगलं च ।
सुभगादिचउज्जुगलं, तित्थयरं चेदि सगवीसं ॥51॥
अन्वयार्थ : [देहादी फासंता पण्णासा] पाँच शरीरों से लेकर स्पर्शनाम तक 50, तथा [णिमिणतावजुगलं च] निर्माण, आतप, उद्योत, तथा [थिरसुहपत्तेयदुगं] स्थिर, शुभ और प्रत्येक का जोड़ा (स्थिर, अस्थिर आदि छह), तथा [अगुरुतियं पोग्गलविवाई] अगुरुलघु आदिक तीन

(ये सब 62 प्रकृतियाँ) पुद्गल-विपाकी हैं ॥४७॥
[आऊणि भवविवाई] (नरकादिक चार) आयु भवविपाकी हैं, [खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ] चार आनुपूर्वी प्रकृतियाँ क्षेत्रविपाकी हैं [अट्ठत्तरि अवसेसा] बाकी जो अठत्तर प्रकृतियों को [जीवविवाई मुणेयव्वा] जीवविपाकी जानों ॥४८॥
वेदनीय की 2, गोत्र की 2, घातियाकर्मों की 47 -- इस प्रकार 51 और नामकर्म की 27, इस तरह 51+27=78 प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं ॥४९॥
तीर्थंकर और उच्छ्वास प्रकृति तथा बादर-पर्याप्त-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति-त्रस-विहायोगति और सुभग इनका जोड़ा (बादर-सूक्ष्म आदिक 16) और नरकादि चार गति तथा एकेन्द्रियादि पाँच जाति इस प्रकार सत्ताईस नामकर्म की प्रकृतियाँ जीवविपाकी जानना ॥५०॥
चार गति, पाँच जाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस-बादर-पर्याप्त इन तीन का जोड़ा (त्रस, स्थावर आदि) एवं सुभग-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति इन चार का जोड़ा (सुभग, दुर्भग आदि) और एक तीर्थंकर प्रकृति -- इस प्रकार क्रम से सत्ताईस की गिनती कही है ॥५१॥
भव-विपाकी : नारकादि पर्यायों के होने में ही इन प्रकृतियों का फल होता है
क्षेत्र-विपाकी : परलोक को गमन करते हुए जीव के मार्ग में ही इनका उदय होता है
जीव-विपाकी : नारक आदि जीव की पर्यायों में ही इनका फल होता है
कर्मों में विभाजन जीव-विपाकी पुद्गल-विपाकी क्षेत्र-विपाकी भाव-विपाकी 78 (घातिया कर्म ४७, वेदनीय २, गोत्र २, गति ४, जाति ५, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, सुस्वर-दु:स्वर, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, त्रस-स्थावर, विहायोगति २, सुभग-दुर्भग, उच्छवास, तीर्थंकर) 36 (शरीर ५, अंगोपांग ३, संस्थान ६, संहनन ६, वर्ण-चतुष्क, निर्माण, आताप, उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, प्रत्येक-साधारण, उच्छ्वास, अगुरुलघु, निर्माण) 4 (आनुपूर्वी ४ [नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव]) 4 (आयु ४ [नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव])

निक्षेप-प्रकरण

णामं ठवणा दवियं, भावोत्ति चउव्विहं हवे कम्मं ।
पयडी पावं कम्मं, मलं ति सण्णा दु णाममलं ॥52॥
अन्वयार्थ : नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से कर्म चार तरह का है । इनमें पहला भेद संज्ञारूप है । प्रकृति, पाप, कर्म और मल -- ये कर्म की संज्ञाएँ हैं । इन संज्ञाओं को ही नाम निक्षेप से कर्म कहते हैं ॥५२॥
सरिसासरिसे दव्वे, मदिणा जीवट्ठियं खु जं कम्मं ।
तं एदत्ति पदिट्ठा, ठवणा तं ठावणाकम्मं ॥53॥
अन्वयार्थ : सदृश अर्थात् कर्म सरीखा और असदृश अर्थात् जो कर्म के समान न हो ऐसे किसी भी द्रव्य में अपनी बुद्धि से ऐसी स्थापना करना कि 'जो जीव में कर्म मिले हुए हैं वे ही ये हैं' -- इस अवधानपूर्वक किये गये निवेश को ही स्थापना कर्म कहते हैं ॥53॥
दव्वे कम्मं दुविहं, आगमणोआगमंति तप्पढमं ।
कम्मागमपरिजाणग-जीवो उवजोगपरिहीणो ॥54॥
अन्वयार्थ : द्रव्यनिक्षेपरूप कर्म दो प्रकार है -- एक आगमद्रव्यकर्म, दूसरा नोआगमद्रव्यकर्म । इन दोनों में जो कर्म का स्वरूप कहने वाले शास्त्र का जानने वाला परंतु वर्तमान काल में उस शास्त्र में उपयोग नहीं रखने वाला जीव है वह पहला आगमद्रव्यकर्म है ॥५४॥
जाणुगसरीर भवियं, तव्वदिरित्तं तु होदि जं विदियं ।
तत्थ सरीरं तिविहं, तियकालगयंति दो सुगमा ॥55॥
अन्वयार्थ : दूसरा जो नोआगमद्रव्यकर्म है वह ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार का है ।
उनमें से ज्ञायकशरीर (कर्मस्वरूप के जानने वाले जीव का शरीर) भूत, वर्तमान, भावी -- इस तरह तीन कालों की अपेक्षा तीन प्रकार का है ।
उन तीनों में से वर्तमान तथा भावी शरीर इन दोनों का **अर्थ** समझने में सुगम है, कठिन नहीं है । क्योंकि वर्तमान शरीर वह है जिसको धारण कर रहा है और भावी शरीर वह है कि जिसको आगामी काल में धारण करेगा ॥५५॥
भूदं तु चुदं चइदं, चदंति तेधा चुदं सपाकेण ।

पडिदं कदलीघाद-परिच्चागेणूणयं होदि ॥56॥

अन्वयार्थ : भूतज्ञायकशरीर च्युत, च्यावित, त्यक्त के भेद से तीन तरह का है । उनमें जो दूसरे किसी कारण के बिना केवल आयु के पूर्ण होने पर नष्ट हो जाये वह च्युतशरीर है । यह च्युतशरीर कदलीघात (अकालमृत्यु) और संन्यास इन दोनों अवस्थाओं से रहित होता है ॥ ५६॥

विसवेयणरत्तक्खय-भयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं ।

उस्सासाहाराणं, णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥57॥

अन्वयार्थ : विष भक्षण से अथवा विष वाले जीवों के काटने से, रक्तक्षय अर्थात् रक्त जिसमें सूखता जाता है ऐसे रोग से अथवा धातुक्षय से, भय से, शस्त्रों के घात से, संक्लेश अर्थात् शरीर, वचन तथा मन द्वारा आत्मा को अधिक पीड़ा पहुँचाने वाली क्रिया होने से, श्वासोच्छ्वास के रुक जाने से और आहार नहीं करने से आयु के छिदने को कदलीघात मरण अथवा अकालमृत्यु कहते हैं ॥५७॥

कदलीघादसमेदं, चागविहीणं तु चइदमिदि होदि ।

घादेण अघादेण व, पडिदं चागेण चत्तमिदि ॥58॥

अन्वयार्थ : जो ज्ञायक का भूत शरीर कदलीघातसहित नष्ट हो गया हो परंतु संन्यास विधि से रहित हो उसे च्यावितशरीर कहते हैं और जो कदलीघातसहित अथवा कदलीघात के बिना संन्यासस्वरूप परिणामों से शरीर छोड़ दिया हो उसे त्यक्त कहते हैं ॥५८॥

भत्तपइण्णाइंगिणि-पाउग्गविहीहिं चत्तमिदि तिविहं ।

भत्तपइण्णा तिविहा, जहण्णमज्झिमवरा य तहा ॥59॥

अन्वयार्थ : भक्तप्रतिज्ञा, इंगिनी और प्रायोग्य की विधि से त्यक्तशरीर तीन प्रकार का है । उनमें भक्तप्रतिज्ञा जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट के भेद से तीन तरह की है ॥५९॥

भत्तपइण्णाइविहि, जहण्णमंतोमुहुत्तयं होदि ।

बारसवरिसा जेट्ठा, तम्मज्झे होदि मज्झिमया ॥60॥

अन्वयार्थ : भक्तप्रतिज्ञा अर्थात् भोजन की प्रतिज्ञा कर जो संन्यासमरण हो उसके काल का प्रमाण जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट बारह वर्ष प्रमाण है तथा मध्य के भेदों का काल एक-एक समय बढ़ता हुआ है । उसका अंतर्मुहूर्त से ऊपर और बारह वर्ष के भीतर जितने भेद हैं उतना प्रमाण समझना ॥६०॥

अप्पोवयारवेक्खं, परोवयारूणमिंगिणीमरणं ।

सपरोवयारहीणं, मरणं पाओवगमणमिदि ॥61॥

अन्वयार्थ : अपने शरीर की टहल आप ही अपने अंगों से करे, किसी दूसरे से रोगादि का उपचार न करावे, ऐसे विधान से जो संन्यास धारण कर मरण करे उस मरण को इंगिनीमरण संन्यास कहते हैं ।

जिसमें अपने तथा दूसरे के भी उपचार (सेवा) से रहित हो **अर्थ**ात् अपनी टहल न तो आप करे, न दूसरे से ही करावे ऐसे संन्यासमरण को प्रायोपगमन संन्यास कहते हैं ॥६१॥

भवियंति भवियकाले, कम्मागमजाणगो स जो जीवो ।

जाणुगसरीरभवियं, एवं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥62॥

अन्वयार्थ : जो कर्म के स्वरूप को कहने वाले शास्त्र का जानने वाला आगे होगा वह जीव ज्ञायकशरीर भावी है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥६२॥

तव्वदिरित्तं दुविहं, कम्मं णोकम्ममिदि तहिं कम्मं ।

कम्मसरूवेणागय, कम्मं दव्वं हवे णियमा ॥63॥

अन्वयार्थ : तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्म कर्म और नोकर्म के भेद से दो प्रकार है ।

ज्ञानावरणादि मूलप्रकृतिरूप अथवा उनके भेद मतिज्ञानावरणादि उत्तरप्रकृतिस्वरूप परिणमता हुआ जो कार्मणवर्गणारूप पुद्गल द्रव्य वह कर्म-तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्म है ऐसा नियम से जानना ॥६३॥

कम्मद्दव्वादण्णं, दव्वं णोकम्मदव्वमिदि होदि ।
भावे कम्मं दुविहं, आगमणोआगमंति हवे ॥64॥

अन्वयार्थ : कर्ममलरूप द्रव्य से भिन्न जो द्रव्य है वह नोकर्म-तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकर्म है । और भावनिक्षेपस्वरूप कर्म आगम तथा नोआगम के भेद से दो प्रकार का होता है ॥६४॥

कम्मागमपरिजाणग-जीवो कम्मागमम्हि उवजुत्तो ।
भावागमकम्मोत्ति य, तस्स य सण्णा हवे णियमा ॥65॥

अन्वयार्थ : जो जीव कर्मस्वरूप के कहने वाले आगम (शास्त्र) का जानने वाला और वर्तमान समय में उसी शास्त्र के चिन्तवन (विचार) रूप उपयोगसहित हो उस जीव का नाम भावागमकर्म अथवा आगमभावकर्म निश्चय से कहा जाता है ॥६५॥

णोआगमभावो पुण, कम्मफलं भुंजमाणगो जीवो ।
इदि सामण्णं कम्मं, चउव्विहं होदि णियमेण ॥66॥

अन्वयार्थ : कर्म के फल को भोगने वाला जो जीव वह नोआगम भावकर्म है । इस तरह निक्षेपों की अपेक्षा सामान्य कर्म चार प्रकार का नियम से जानना ॥६६॥

मूलुत्तरपयडीणं, णामादी एवमेव णवरिं तु ।
सगणामेण य णामं, ठवणा दवियं हवे भावो ॥67॥

अन्वयार्थ : कर्म की मूलप्रकृति 8 तथा उत्तर प्रकृति 148 हैं । इन दोनों के जो नामादि चार निक्षेप है उनका स्वरूप सामान्य कर्म की तरह समझना । परंतु इतनी विशेषता है कि, जिस प्रकृति का जो नाम हो उसी के अनुसार नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव निक्षेप होते हैं ॥६७॥

मूलुत्तरपयडीणं, णामादि चउव्विहं हवे सुगमं ।
वज्जित्ता णोकम्मं, णोआगमभावकम्मं च ॥68॥

अन्वयार्थ : मूलप्रकृति तथा उत्तरप्रकृतियों के नामादिक चार भेदों का स्वरूप समझना सरल है, परंतु उनमें द्रव्य तथा भावनिक्षेप के भेदों में से नोकर्म तथा नोआगमभावकर्म का स्वरूप समझना कठिन है ॥६८॥

पडपडिहारसिमज्जा, आहारं देह उच्चणीचंगं ।
भंडारे मूलाणं, णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥69॥

अन्वयार्थ : द्रव्यनिक्षेपकर्म का जो एक भेद नोकर्मतद्व्यतिरिक्त है उसी को यहाँ नोकर्म शब्द से समझना । जिस प्रकृति के फल देने में जो निमित्तकारण हो वही उस प्रकृति का नोकर्म जानना ।

ज्ञानावरणादि 8 मूलप्रकृतियों के नोकर्म द्रव्यकर्म क्रम से वस्तु के चारों तरफ लगा हुआ कनात का कपड़ा, द्वारपाल, शहद लपेटी तलवार की धार, शराब, अन्नादि आहार, उच्च-नीच शरीर, शरीर और भंडारी -- ये आठ जानना ॥६९॥

पडविसयपहुदि दव्वं, मदिसुदवाघादकरणसंजुत्तं ।
मदिसुदबोहाणं पुण, णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥70॥

अन्वयार्थ : वस्तुस्वरूप के ढांकने वाले वस्त्र आदि पदार्थ मतिज्ञानावरण के नोकर्म द्रव्यकर्म हैं । और इन्द्रियों के रूपादिक विषय श्रुतज्ञान को नहीं होने देते इस कारण वे श्रुतज्ञानावरण कर्म के नोकर्म हैं ॥७०॥

ओहिमणपज्जवाणं, पडिघादणिमित्तसंकिलेसयरं ।
जं बज्झट्ठं तं खलु, णोकम्मं केवले णत्थि ॥71॥

अन्वयार्थ : अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान इन दोनों के घात करने का निमित्त कारण जो संक्लेशरूप (खेदरूप) परिणाम उसको करने वाली जो बाह्य वस्तु वह अवधिज्ञानावरण तथा मनःपर्ययज्ञानावरण का नोकर्म है । और केवलज्ञानावरण का नोकर्म कोई वस्तु नहीं है क्योंकि केवलज्ञान क्षायिक भाव है । उस केवलज्ञान का घात करने वाले संक्लेश परिणामों का अभाव है ॥७१॥

पंचण्हं णिद्दाणं, माहिसदहिपहुदि होदि णोकम्मं ।
वाघादकरपडादी, चक्खुअचक्खूण णोकम्मं ॥72॥

अन्वयार्थ : पाँच निद्राओं के नोकर्म भैंस का दही, लहसन, खली इत्यादिक हैं क्योंकि ये निद्रा की अधिकता करने वाली वस्तुएँ हैं । चक्षु तथा अचक्षुदर्शन के रोकने वाले वस्त्र आदि द्रव्य चक्षुदर्शनावरण और अचक्षुदर्शनावरण कर्म के नोकर्म हैं ॥७२॥

ओहीकेवलदंसण-णोकम्मं ताण णाणभंगो व ।

सादेदरणोकम्मं, इट्ठाणिट्ठण्णपाणादी ॥73॥

अन्वयार्थ : अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण का नोकर्म अवधिज्ञानावरण तथा केवलज्ञानावरण के नोकर्म की तरह ही जानना । साता वेदनीय तथा असाता वेदनीय का नोकर्म क्रम से अपने को रुचने वाली तथा अपने को नहीं रुचे ऐसी खाने-पीने आदि की वस्तु जानना ॥७३॥

आयदणाणायदणं, सम्मे मिच्छे य होदि णोकम्मं ।

उभयं सम्मामिच्छे, णोकम्मं होदि णियमेण ॥74॥

अन्वयार्थ : जिन, जिनमंदिर, जिनागम, जिनागम के धारण करने वाले, तप और तप के धारक — ये छह आयतन सम्यक्त्व प्रकृति के नोकर्म हैं ।

कुदेव, कुदेव का मंदिर, कुशास्त्र, कुशास्त्र के धारक, खोटी तपस्या, खोटी तपस्या के करने वाले — ये 6 अनायतन मिथ्यात्व प्रकृति के नोकर्म हैं ।

तथा आयतन और अनायतन दोनों मिले हुए सम्यग्मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय के नोकर्म हैं । ऐसा निश्चय कर समझना ॥७४॥

अणणोकम्मं मिच्छत्तायदणादी हु होदि सेसाणं ।

सगसगजोग्गं सत्थं, सहायपहुदी हवे णियमा ॥75॥

अन्वयार्थ : अनन्तानुबंधी कषाय के नोकर्म मिथ्या आयतन अर्थात् कुदेव आदि छह अनायतन हैं । और बाकी बची हुई बारह कषायों के नोकर्म देशचारित्र, सकलचारित्र तथा यथाख्यातचारित्र के घात में सहायता करने वाले काव्य, नाटक, कोक शास्त्र और पापी जार (कुशीली) पुरुषों की संगति करना इत्यादिक हैं, ऐसा नियम से जानना ॥७५॥

थीपुंसंढसरीरं, ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु ।

वेलंबको सुपुत्तो, हस्सरदीणं च णोकम्मं ॥76॥

इट्ठाणिट्ठवियोगं, जोगं अरदिस्स मुदसुपुत्तादी ।

सोगस्स य सिंहादी, णिंदिददव्वं च भयजुगले ॥77॥

अन्वयार्थ : स्त्रीवेद का नोकर्म स्त्री का शरीर, पुरुषवेद का नोकर्म पुरुष का शरीर है, और नपुंसकवेद का नोकर्म स्त्री, पुरुष और नपुंसक का शरीर है ।

हास्यकर्म के नोकर्म विदूषक व बहुरूपिया आदि हैं जो कि हँसी-ठठ्ठा करने के पात्र हैं ।

रतिकर्म का नोकर्म अच्छा गुणवान् पुत्र है; क्योंकि गुणवान् पुत्र पर अधिक प्रीति होती है ॥७६॥

अरति कर्म का नोकर्मद्रव्य इष्ट का (प्रियवस्तु का) वियोग होना और अनिष्ट **अर्थ**ात् अप्रिय वस्तु का संयोग होना है ।

शोक का नोकर्मद्रव्य सुपुत्र, स्त्री आदि का मरना है ।

सिंह आदिक भय के करने वाले पदार्थ भयकर्म के नोकर्म द्रव्य हैं । तथा

निंदित वस्तु जुगुप्सा कर्म की नोकर्मद्रव्य है ॥७७॥

णिरयायुस्स अणिट्ठाहारो सेसाणमिट्ठमण्णादी ।

गदिणोकम्मं दव्वं, चउग्गदीणं हवे खेत्तं ॥78॥

अन्वयार्थ : अनिष्ट आहार अर्थात् नरक की विषरूप मिट्टी आदि नरकायु का नोकर्मद्रव्य है ।

बाकी तिर्यंच आदि तीन आयुकर्मों का नोकर्म इन्द्रियों को प्रिय लगे ऐसा अन्न-पानी आदि है ।

गति नामकर्म का नोकर्म द्रव्य चार गतियों का क्षेत्र (स्थान) है ॥७८॥

णिरयादीण गदीणं, णिरयादी खेत्तयं हवे णियमा ।

जाईए णोकम्मं, दव्विंदियपोग्गलं होदि ॥79॥

अन्वयार्थ : नरकादि चार गतियों का नोकर्मद्रव्य नियम से नरकादि गतियों का अपना-अपना क्षेत्र है ।

जातिकर्म का नोकर्म द्रव्येन्द्रियरूप पुद्गल की रचना है ॥७९॥

एइंदियमादीणं, सगसगदव्विंदियाणि णोकम्मं ।

देहस्स य णोकम्मं, देहुदयजदेहखंधाणि ॥80॥

अन्वयार्थ : एकेन्द्रिय आदिक पाँच जातियों के नोकर्म अपनी-अपनी द्रव्येन्द्रिय है ।

शरीर नामकर्म का नोकर्मद्रव्य शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुए अपने शरीर के स्कंधरूप पुद्गल जानना ॥८०॥

ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजकम्मणोकम्मं ।

ताणुदयजचउदेहा, कम्मे विस्संचयं णियमा ॥81॥

अन्वयार्थ : औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस शरीरनामकर्म का नोकर्मद्रव्य अपने-अपने उदय से प्राप्त हुई शरीरवर्गणा हैं क्योंकि उन वर्गणाओं से ही शरीर बनता है । और कार्मणशरीर का नोकर्मद्रव्य विस्रसोपचयरूप (स्वभाव से कर्मरूप होने योग्य कार्मण वर्गणा) परमाणु हैं ॥८१॥

बंधणपहुदिसमण्णिय-सेसाणं देहमेव णोकम्मं ।

णवरि विसेसं जाणे, सगखेत्तं आणुपुव्वीणं ॥82॥

अन्वयार्थ : बंधन नामकर्म से लेकर जितनी पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ हैं उनका, और पहले कही हुई प्रकृतियों के सिवाय जीवविपाकी प्रकृतियों में से जितनी बाकी बची उनका नोकर्म शरीर ही है क्योंकि उन प्रकृतियों से उत्पन्न हुए सुखादिरूप कार्य का कारण शरीर ही है । इतना विशेष है कि क्षेत्रविपाकी चार आनुपूर्वी प्रकृतियों का नोकर्मद्रव्य अपना-अपना क्षेत्र ही है ॥८२॥

थिरजुम्मस्स थिराथिर-रसरुहिरादीणि सुहजुगस्स सुहं ।

असुहं देहावयवं, सरपरिणदपोग्गलाणि सरे ॥83॥

अन्वयार्थ : स्थिरकर्म का नोकर्म अपने-अपने ठिकाने पर स्थिर रहने वाले रस, रक्त आदि हैं और अस्थिर प्रकृति के नोकर्म अपने-अपने ठिकाने से चलायमान हुए रस, रक्त आदिक हैं । शुभ प्रकृति के नोकर्मद्रव्य शरीर के शुभ अवयव हैं तथा अशुभ प्रकृति के नोकर्मद्रव्य शरीर के अशुभ (जो देखने में सुन्दर न हों ऐसे) अवयव हैं ।

स्वर नामकर्म का नोकर्म सुस्वर-दुःस्वररूप परिणमे पुद्गल परमाणु हैं ॥८३॥

उच्चस्सुच्चं देहं, णीचं णीचस्स होदि णोकम्मं ।

दाणादिचउक्काणं, विग्घगणगपुरिसपहुदी हु ॥84॥

अन्वयार्थ : उच्चगोत्र का नोकर्मद्रव्य लोकपूजित कुल में उत्पन्न हुआ शरीर है और नीच गोत्र का नोकर्म लोकनिंदित कुल में प्राप्त हुआ शरीर है । दानादिक चार का अर्थात् दान, लाभ, भोग और उपभोगान्तराय कर्म का नोकर्मद्रव्य दानादिक में विघ्न करने वाले पर्वत, नदी, पुरुष, स्त्री आदि जानने ॥८४॥

विरियस्स य णोकम्मं, रुक्खाहारादिबलहरं दव्वं ।

इदि उत्तरपयडीणं, णोकम्मं दव्वकम्मं तु ॥85॥

अन्वयार्थ : वीर्यांतराय कर्म के नोकर्म रूखा आहार आदि बल के नाश करने वाले पदार्थ हैं । इस प्रकार उत्तरप्रकृतियों के नोकर्म द्रव्यकर्म का स्वरूप कहा ॥८५॥

णोआगमभावो पुण, सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो ।

पोग्गलविवाइयाणं, णत्थि खु णोआगमो भावो ॥86॥

अन्वयार्थ : जिस-जिस कर्म का जो-जो फल है उस फल को भोगते हुए जीव को ही उस-उस कर्म का नोआगमभावकर्म जानना । पुद्गलविपाकी प्रकृतियों का नोआगमभावकर्म नहीं होता । क्योंकि उनका उदय होने पर भी जीवविपाकी प्रकृतियों की सहायता के बिना साताजन्य सुखादिक की उत्पत्ति नहीं हो सकती । इस तरह सामान्यकर्म की मूल उत्तर दोनों प्रकृतियों के चार निक्षेप कहे ॥८६॥

मंगलाचरण
णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे थवं वोच्छं ॥87॥
अन्वयार्थ : मैं (नेमिचन्द्र आचार्य) कर्मरूप वैरी के जीतने में असहाय (किसी दूसरे की सहायता की अपेक्षा जिसमें नहीं है ऐसे) पराक्रम वाले तथा महावीर (वंदने वालों को मनवांछित फल के देने वाले) ऐसे नेमिनाथ तीर्थंकररूपी चंद्रमा को नमस्कार करके, गुणस्थान और मार्गणास्थानों में कर्मों के बंध-उदय-सत्त्व को बताने वाले *स्तवरूप ग्रन्थ को अब कहूँगा ॥८७॥*स्तव = सकल अंगों संबंधी अर्थ जिस ग्रंथ में पाया जाता है
सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार सवित्थरं ससंखेवं ।
वण्णणसत्थं थयथुइ, धम्मकहा होइ णियमेण ॥88॥
अन्वयार्थ : जिसमें सर्वांगसंबंधी अर्थ विस्तारसहित अथवा संक्षेपता से कहा जाये ऐसे शास्त्र को स्तव कहते हैं । जिसमें एक अंग (अंश) का अर्थ विस्तार से अथवा संक्षेप से हो उस शास्त्र को स्तुति कहते हैं । अंग के एक अधिकार का अर्थ जिसमें विस्तार से वा संक्षेप से कहा जाये उसे धर्मकथा कहते हैं ॥८८॥
पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो ।
उक्कस्समणुक्कस्सं, जहण्णमजहण्णग त्ति पुधं ॥89॥
अन्वयार्थ : प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध इस तरह बंध के चार भेद हैं । तथा इनमें भी हर एक बंध के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इस तरह चार-चार भेद हैं ॥८९॥
सादिअणादी धुवअद्धुवो य बंधो दु जेट्ठमादीसु ।
णाणेगं जीवं पडि, ओघादेसे जहाजोग्गं ॥90॥
अन्वयार्थ : उत्कृष्ट आदिक भेदों के भी सादि (जिसका छूटकर पुन: बंध हो), अनादिबंध (अनादिकाल से जिसके बंध का अभाव न हुआ हो), ध्रुवबंध (जिसका निरंतर बंध हुआ करे), और अध्रुवबंध (जो अंतरसहित बंध हो), इस प्रकार चार-चार भेद हैं । इन बंधों को नाना जीवों की तथा एक जीव की अपेक्षा से गुणस्थान और मार्गणास्थानों में यथासंभव घटित कर लेना चाहिये ॥९०॥
ठिदिअणुभागपदेसा, गुणपडिवण्णेसु जेसिमुक्कस्सा ।
तेसिमणुक्कस्सो चउव्विहोऽजहण्णेवि एमेव ॥91॥
अन्वयार्थ : गुणप्रतिपन्न अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि, सासादनादिक ऊपर-ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीवों में जिन कर्मों का स्थिति-अनुभाग-प्रदेशबंध उत्कृष्ट होता है उन्हीं कर्मों का अनुत्कृष्ट स्थिति, अनुभाग, प्रदेशबंध सादि बंधादि के भेद से चार तरह का होता है । इसी तरह जिन कर्मों का स्थिति-अनुभाग-प्रदेशबंध ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में जघन्य पाया जाता है उन्हीं कर्मों का अजघन्य बंध चार प्रकार का होता है ॥९१॥
सम्मेव तित्थबंधो, आहारदुगं पमादरहिदेसु ।
मिस्सूणे आउस्स य, मिच्छादिसु सेसबंधो दु ॥92॥
अन्वयार्थ : असंयत गुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान के छठे भाग तक सम्यग्दृष्टि के ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है । आहारक शरीर और आहारक अङ्गोपाङ्ग प्रकृतियों का बंध अप्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण के छठे भाग तक ही होता है । आयुकर्म का बंध मिश्र गुणस्थान तथा निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था को प्राप्त मिश्रकाययोग इन दोनों के सिवाय मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक ही होता है ।
बाकी बची प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि वगैरह गुणस्थानों में अपनी-अपनी बंध की व्युच्छित्ति तक होता है ॥९२॥
पढमुवसमिये सम्मे, सेसतिये अविरदादिचत्तारि ।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥93॥
अन्वयार्थ : प्रथमोपशम सम्यक्त्व में अथवा बाकी के तीनों (द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, क्षयोपशम सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व) की

अवस्था में, असंयत से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक चार गुणस्थानों वाले मनुष्य ही, केवली तथा श्रुतकेवली (द्वादशाङ्ग के पारगामी) के निकट ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध का आरंभ करते हैं ॥९३॥

सोलस पणवीस णभं, दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा ।

दुग तीस चदुरपुव्वे, पण सोलस जोगिणो एक्को ॥94॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के अन्त समय में सोलह प्रकृतियाँ बंध-व्युच्छिन्न होती हैं । अर्थात् पहले गुणस्थान तक ही उनका बंध होता है, उससे आगे के गुणस्थानों में उनका बंध नहीं होता ।

इसी प्रकार दूसरे गुणस्थान में 25 प्रकृतियों की, तीसरे में शून्य, चौथे में दस की, पाँचवें में चार की, छठे में छह की, सातवें में एक प्रकृति की व्युच्छित्ति होती है ।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान के सात भागों में से पहले भाग में दो की, दूसरे भाग से पाँचवें भाग तक शून्य, छठे भाग में तीस की, सातवें भाग में चार प्रकृतियों की बन्ध-व्युच्छित्ति होती है ।

नवमें में पाँच की, दसवें में सोलह की, ग्यारहवें बारहवें गुणस्थान में शून्य, तेरहवें सयोगकेवली गुणस्थान में एक प्रकृति की बन्ध-व्युच्छित्ति होती है ।

चौदहवें गुणस्थान में बंध भी नहीं और व्युच्छित्ति भी नहीं होती ॥९४॥

मिच्छत्तहुंडसंढाऽसंपत्तेयक्खथावरादावं ।

सुहुमतियं वियलिंदिय, णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे ॥95॥

अन्वयार्थ : मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसक वेद, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्मादि तीन (सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण), विकलेन्द्रिय तीन जाति (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय), नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु ये 16 प्रकृतियाँ मिथ्यात्व गुणस्थान के अंत समय में बंध से व्युच्छिन्न हो जाती है । अर्थात् मिथ्यात्व से आगे के गुणस्थानों में इनका बंध नहीं होता ॥९५॥

बिदियगुणे अणथीणति-दुभगतिसंठाणसंहदिचउक्कं ।

दुग्गमणित्थीणीचं, तिरियदुगुज्जोवतिरियाऊ ॥96॥

अन्वयार्थ : दूसरे सासादन गुणस्थान के अंतसमय में अनंतानुबंधी क्रोधादि चार, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला ये तीन, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय ये तीन, न्यग्रोधादि चार संस्थान, वज्रनाराचादि चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यंग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत, और तिर्यंचायु, इन 25 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है ॥९६॥

अयदे विदियकसाया, वज्जं ओरालमणुदुमणुवाऊ ।

देसे तदियकसाया, णियमेणिह बंधवोच्छिण्णा ॥97॥

अन्वयार्थ : चौथे असंयत गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार कषाय, वज्रऋषभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु, ये 10 प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं । पाँचवें देशविरत गुणस्थान में तीसरी प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि 4 कषाएँ नियम से बंध से व्युच्छिन्न होती हैं ॥९७॥

छट्ठे अथिरं असुहं, असादमजसं च अरदिसोगं च ।

अपमत्ते देवाऊ, णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति ॥98॥

अन्वयार्थ : छठे गुणस्थान के अंतिम समय में अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक -- इन छह प्रकृतियों की बन्ध-व्युच्छित्ति होती है । सातवें अप्रमत्त गुणस्थान में एक देवायु प्रकृति की ही व्युच्छित्ति होती है ॥९८॥

मरणूणम्हि णियट्टी-पढमे णिद्दा तहेव पयला य ।

छट्ठे भागे तित्थं, णिमिणं सग्गमणपंचिंदी ॥99॥

तेजदुहारदुसमचउ-सुरवण्णागुरुचउक्कतसणवयं ।

चरिमे हस्सं च रदी, भयं जुगुच्छा य वोच्छिण्णा ॥100॥

अन्वयार्थ : निवृत्ति (आठवें अपूर्वकरण) के मरण-अवस्थारहित प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला इन 2 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है ।

छठे भाग के अंतसमय में तीर्थंकर प्रकृति, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पंचेंद्रिय जाति, तैजस कार्मण ये दो, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग ये दो, समचतुस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग -- ये चार, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास -- ये चार और त्रसादि नौ -- इन 30 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है । अंत के सातवें भाग में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा -- इन 4 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है ॥९९-१००॥

पुरिसं चदुसंजलणं, कमेण अणियट्टिपंचभागेसु ।

पढमं विग्घं दंसण-चउ जसउच्चं च सुहुमंते ॥101॥

अन्वयार्थ : नवमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पाँच भागों में से पहले भाग में पुरुषवेद की व्युच्छित्ति, बाकी के चार भागों में क्रम से संज्वलन क्रोधादि चार कषायों की व्युच्छित्ति जानना ।

दसवें सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में ज्ञानावरण पाँच, अंतराय के पाँच भेद, चक्षुर्दर्शनावरणादि चार, यशस्कीर्ति और उच्च गोत्र -- इस प्रकार 16 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है ॥१०१॥

उवंसतखीणमोहे, जोगिम्हि य समयियट्ठिदी सादं ।

णायव्वो पयडीणं, बंधस्संतो अणंतो य ॥102॥

अन्वयार्थ : उपशांतमोह गुणस्थान में, क्षीणमोह गुणस्थान में और सयोगकेवली गुणस्थान में एक समय की स्थिति वाला एक साता वेदनीय प्रकृति का ही बंध होता है । इस कारण तेरहवें गुणस्थान के अंतसमय में साता वेदनीय प्रकृति की ही व्युच्छित्ति होती है । चौदहवें में बंध के कारणभूत योग का अभाव होने से बंध भी नहीं तथा व्युच्छित्ति भी नहीं होती । इस प्रकार प्रकृतियों के बंध का अन्त **अर्थ**ात् व्युच्छित्ति जानना चाहिए ।

सत्तरसेक्कग्गसयं, चउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठी ।

बंधा णवट्ठवण्णा, दुवीस सत्तारसेक्कोघे ॥103॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से 117, 101, 74, 77, 67, 63, 59, 58, 22, 17, 1, 1, 1 -- इस प्रकार प्रकृतियों का बंध तेरहवें गुणस्थान तक होता है । चौदहवें गुणस्थान में बंध नहीं होता ॥१०३॥

तिय उणवीसं छत्तिय-तालं तेवण्ण सत्तवण्णं च ।

इगिदुगसट्ठी बिरहिय, तियसय उणवीससय त्ति वीससयं ॥104॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादृष्टि आदिक चौदह गुणस्थानों में क्रम से 3, 19, 46, 43, 53, 57, 61, 62, दो रहित सौ (98), तीन सहित सौ (103), 119 तीन जगह (ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें में) और चौदहवें में 120 प्रकृतियों का अबंध है ॥१०४॥

ओघे वा आदेसे, णारयमिच्छम्हि चारि वोच्छिण्णा ।

उवरिम बारस सुरचउ, सुराउ आहारयमबंधा ॥105॥

अन्वयार्थ : मार्गणाओं में व्युच्छित्ति वगैरह तीनों अवस्थाएँ गुणस्थान के समान जानना । परन्तु विशेष यह है कि नरकगति में मिथ्यात्व गुणस्थान के अन्त में मिथ्यात्वादि चार प्रकृतियों की ही व्युच्छित्ति होती है । सोलह में से आदि की मिथ्यात्वादि चार प्रकृतियों के बिना बाकी एकेन्द्रिय आदि बारह तथा सुर-चतुष्क, देवायु और आहारकद्विक -- ये सब 19 प्रकृतियाँ अबंधरूप हैं ॥१०४॥

धम्मे तित्थं बंधदि, वंसामेघाण पुण्णगो चेव ।

छट्ठोत्ति य मणुवाऊ, चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥106॥

अन्वयार्थ : धर्मा नाम के पहले नरक की पृथिवी में पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है । वंशा नामक दूसरे तथा मेघा नामक तीसरे नरक में पर्याप्त जीव ही तीर्थंकर प्रकृति को बाँधता है । मघवी नामक छट्ठे नरक तक ही मनुष्यायु का बंध होता है । अंत के माघवी नाम सातवें नरक में मिथ्यात्व गुणस्थान में ही तिर्यंच आयु का बंध होता है ॥१०६॥

मिस्साविरदे उच्चं, मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो ।

मिच्छा सासणसम्मा, मणुवदुगुच्चं ण बंधंति ॥107॥

अन्वयार्थ : सातवें नरक में मिश्रगुणस्थान और अविरतनाम के चौथे गुणस्थान में ही उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी -- इन तीन

प्रकृतियों का बंध है । मिथ्यात्व गुणस्थान वाले तथा सासादन सम्यक्त्वी जीव वहाँ पर उच्च गोत्र और मनुष्य-द्विक -- इन तीनों प्रकृतियों को नहीं बाँधते ॥१०७॥

तिरिये ओघो तित्था-हारूणो अविरदे छिदी चउरो ।

उवरिमछण्हं च छिदी, सासणसम्मे हवे णियमा ॥108॥

अन्वयार्थ : तिर्यंचगति में भी व्युच्छित्ति वगैरह गुणस्थानों की तरह ही समझना । परंतु इतनी विशेषता है कि तीर्थंकर और आहारक-द्विक — इन तीनों का बंध नहीं होता । इसी कारण तिर्यंचगति में बंध-योग्य प्रकृतियाँ 117 ही हैं । चौथे अविरत गुणस्थान में अप्रत्याख्यान क्रोधादि 4 की ही व्युच्छित्ति है । चार से आगे की वज्रऋषभनाराच आदि 6 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति दूसरे सासादन गुणस्थान में ही नियम से हो जाती है ॥१०८॥

सामण्णतिरियपंचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव ।

सुरणिरयाउ अपुण्णे, वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि ॥109॥

अन्वयार्थ : सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच, स्त्रीवेदरूप तिर्यंच में ऊपर लिखित रीति से ही व्युच्छित्ति आदिक समझना । लब्धि-अपर्याप्तक तिर्यंच में देवायु, नरकायु और वैक्रियिक- षट्क -- इन आठ प्रकृतियों का बंध नहीं होता है ॥१०९॥

तिरियेव णरे णवरि हु, तित्थाहारं च अत्थि एमेव ।

सामण्णपुण्णमणुसिणि-णरे अपुण्णे अपुण्णेव ॥110॥

अन्वयार्थ : मनुष्य गति में व्युच्छित्ति वगैरह की रचना तिर्यंचगति की ही तरह जानना । विशेषता इतनी है कि यहाँ पर तीर्थंकर और आहारक-द्विक -- इन तीनों का भी बंध होता है और गुणस्थान 14 हैं । इसी कारण यहाँ पर बंध-योग्य प्रकृतियां 120 हैं ।

सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, स्त्रीवेदरूप मनुष्य -- इन तीनों की व्युच्छित्ति आदि की रचना तो मनुष्य गति जैसी ही है ।

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य की रचना तिर्यंचलब्ध्यपर्याप्त की तरह समझना ॥११०॥

णिरयेव होदि देवे, आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी ।

सोलस चेव अबन्धो, भवणतिए णत्थि तित्थयरं ॥111॥

अन्वयार्थ : देवगति में व्युच्छित्ति आदिक नरकगति के समान जानना । परंतु इतना विशेष है कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में दूसरे ईशान स्वर्ग तक पहले गुणस्थान की 16 प्रकृतियों में से मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों की ही व्युच्छित्ति होती है । बाकी बची हुई सूक्ष्मादि 9 तथा सुर-चतुष्क, देवायु, आहारकद्विक -- ये सात, सब 9+7 मिलाकर 16 प्रकृतियाँ अबंधरूप हैं । इसी कारण यहाँ बंध-योग्य प्रकृतियाँ 104 हैं । भवनत्रिक देवों में तीर्थंकर प्रकृति बंध-योग्य नहीं है ॥१११॥

कप्पित्थीसु ण तित्थं, सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं ।

तिरियाऊ उज्जोवो, अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥112॥

अन्वयार्थ : कल्पवासिनी स्त्रियों में तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता । *शतारचतुष्क (तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु, तथा उद्योत) का बंध ग्यारहवें बारहवें-शतार सहस्रार नाम के स्वर्ग तक ही होता है । इसके ऊपर आनतादि स्वर्गों में रहने वालों के इन चार प्रकृतियों का बंध नहीं होता ॥११२॥ *इन चार प्रकृतियों का दूसरा नाम ‘शतारचतुष्क भी है; क्योंकि शतार युगल तक ही इनका बंध होता है

पुण्णिदरं विगिविगले, तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे ।

पज्जत्तिं णवि पावदि, इदि णरतिरियाउगं णत्थि ॥113॥

अन्वयार्थ : एकेंद्रिय तथा विकलत्रय में लब्धि-अपर्याप्तक अवस्था की तरह बंध-योग्य 109 प्रकृतियाँ समझना क्योंकि तीर्थंकर, आहारकद्वय, देवायु, नरकायु और वैक्रियिक-षट्क -- इस तरह ग्यारह प्रकृतियों का बंध नहीं होता । एकेन्द्रिय और विकलत्रय में मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान ही होते हैं । इनमें से पहले गुणस्थान में बंध-व्युच्छित्ति 15 प्रकृतियों की होती है ॥११३॥*मनुष्य आयु और तिर्यंच आयु की बंध-व्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थान में ही क्यों कही? तो इसका कारण यह है कि एकेन्द्रिय तथा विकलत्रय में उत्पन्न हुआ जीव सासादन गुणस्थान में शरीर पर्याप्ति को पूरा नहीं कर सकता है क्योंकि सासादन का काल थोड़ा और निवृत्ति-अपर्याप्त अवस्था का

काल बहुत है । इसी कारण सासादन गुणस्थान में मनुष्यायु तथा तिर्यंचायु का भी बंध नहीं होता है; प्रथम गुणस्थान में ही बंध और व्युच्छित्ति होती है

पचेन्द्रियेसु ओघं एयक्खे वा वणप्फदीयंते ।

मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं व हि तेउवाउम्हि ॥114॥

अन्वयार्थ : पंचेंद्रिय जीवों के व्युच्छित्ति आदिक गुणस्थान की तरह समझना, कुछ विशेषता नहीं है और कार्यमार्गणा में पृथ्वीकायादि वनस्पतिकाय पर्यंत में एकेन्द्रिय की तरह, व्युच्छित्ति आदिक जानना । विशेष यह है कि तेजकाय तथा वायुकाय में मनुष्य गति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, उच्च गोत्र -- इन चार प्रकृतियों का बंध नहीं होता है और गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि ही है ।

ण हि सासणो अपुण्णे, साहारणसुहुमगे य तेउदुगे ।

ओघं तस मणवयणे, ओराले मणुवगइभंगो ॥115॥

अन्वयार्थ : लब्धि-अपर्याप्तक अवस्था में, साधारण जीवों में, सब सूक्ष्मकाय वालों में, तेजोकाय और वायुकाय वालों में सासादन नामक दूसरा गुणस्थान नहीं होता । इसका कारण काल का थोड़ा होना है सो पहले कह चुके हैं ।

त्रसकाय की रचना गुणस्थानों की तरह समझनी ।

योगमार्गणा में मनोयोग तथा वचनयोग की रचना गुणस्थानों की तरह जाननी ।

औदारिक काययोग में मनुष्यगति की तरह रचना जानना ॥११५॥

ओराले वा मिस्से, ण सुरणिरयाउहारणिरयदुगं ।

मिच्छदुगे देवचओ, तित्थं ण हि अविरदे अत्थि ॥116॥

अन्वयार्थ : औदारिक-मिश्रकाययोग में औदारिक काययोगवत् रचना जानना । विशेष बात यह है कि देवायु, नरकायु, आहारक-द्विक, नरक-द्विक -- इन छह प्रकृतियों का बंध नहीं होता अर्थात् यहाँ पर 114 का ही बंध होता है ।

उसमें भी मिथ्यात्व तथा सासादन -- इन दो गुणस्थानों में देव-चतुष्क और तीर्थंकर इन 5 प्रकृतियों का बंध नहीं होता । किंतु अविरतनामा चौथे गुणस्थान में इनका बंध होता है ॥११६॥

पण्णारसमुणतीसं, मिच्छदुगे अविरदे छिदी चउरो ।

उवरिमपणसट्ठीवि य, एक्कं सादं सजोगिम्हि ॥117॥

अन्वयार्थ : औदारिकमिश्रकाययोग में मिथ्यात्व और सासादन -- इन दो गुणस्थानों में 15 तथा 29 प्रकृतियों की बंध-व्युच्छित्ति क्रम से जानना ।

चौथे अविरत गुणस्थान में ऊपर की चार तथा 65 मिलाकर सब 69 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है ।

तेरहवें सयोगीकेवली के एक साता वेदनीय की ही व्युच्छित्ति जानना ॥११७॥

देवे वा वेगुव्वे, मिस्से णरतिरियआउगं णत्थि ।

छट्ठगुणं वाहारे, तम्मिस्से णत्थि देवाऊ ॥118॥

अन्वयार्थ : वैक्रियिक काययोग में देवगति के समान जानना ।

वैक्रियिक-मिश्रकाययोग में देवगति के समान है परंतु इस मिश्र में मनुष्यायु और तिर्यंचायु का बंध नहीं होता ।

आहारक काययोग में छठे गुणस्थान के समान रचना जानना । लेकिन आहारक-मिश्रकाययोग में देवायु का बंध नहीं होता है ॥११८॥

कम्मे उरालमिस्सं, वा णाउदुगंपि णव छिदी अयदे ।

वेदादाहारोत्ति य, सगुणट्ठाणाणमोघं तु ॥119॥

अन्वयार्थ : कार्मणकाययोगी की रचना औदारिकमिश्र की तरह जानना । परंतु विग्रहगति में आयु का बंध न होने से मनुष्यायु तथा तिर्यंचायु इन दोनों का भी बंध नहीं होता, और चौथे असंयत गुणस्थान में नौ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है, इतनी विशेषता है ।

वेद मार्गणा से लेकर आहार मार्गणा तक जैसा साधारण कथन गुणस्थानों में है वैसा ही जानना ॥११९॥

णवरि य सव्वुवसम्मे, णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण ।

मिच्छस्संतिमणवयं, बारं ण हि तेउपम्मेसु ॥120॥
सुक्के सदरचउक्कं, वामंतिमबारसं च ण च अत्थि ।
कम्मेव अणाहारे, बंधस्संतो अणंतो य ॥121॥

अन्वयार्थ : विशेषता यह है कि सम्यक्त्व मार्गणा में निश्चयकर दोनों ही उपशम सम्यक्त्वी जीवों के मनुष्यायु और देवायु का बंध नहीं होता ।

लेश्या मार्गणा में तेजोलेश्या वाले के मिथ्यात्व गुणस्थान की अंत की नौ तथा पद्मलेश्या वाले के मिथ्यात्व गुणस्थान की अंत की बारह प्रकृतियों का बंध नियम से नहीं होता ।

शुक्ललेश्या वाले के शतार-चतुष्क और मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के अंत की बारह, सब मिलकर 16 प्रकृतियों का बंध नहीं होता है ।

आहार मार्गणा में अनाहारक अवस्था में कार्मण योग की भांति बंध-व्युच्छित्ति आदिक तीनों की रचना समझ लेना ॥

सादि अणादी धुवअद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स ।
तदियो सादि य सेसो, अणादि धुवसेसगो आऊ ॥122॥

अन्वयार्थ : छह कर्मों का प्रकृतिबंध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवरूप चारों प्रकार का होता है । परंतु तीसरे वेदनीय कर्म का बंध तीन प्रकार का होता है, सादि बंध नहीं होता और आयुकर्म का अनादि तथा ध्रुव बंध के सिवाय दो प्रकार का अर्थात् सादि और अध्रुव ही बंध होता है ॥१२२॥

सादी अबंधबंधे, सेढि अणारूढगे अणादी हु ।
अभव्वसिद्धम्हि धुवो, भवसिद्धे अद्धुवो बंधो ॥123॥

अन्वयार्थ : जिस कर्म के बंध का अभाव होकर फिर वही कर्म बँधे उसे सादिबंध कहते हैं । जो गुणस्थानों की श्रेणी पर ऊपर को नहीं चढ़ा अर्थात् जिस बंध का अभाव नहीं हुआ वह अनादिबंध है । जिस बंध का आदि तथा अंत न हो वह ध्रुवबंध है । यह बंध अभव्य जीव के होता है । जिस बंध का अंत आ जावे उसे अध्रुवबंध कहते हैं । यह अध्रुवबंध भव्य जीवों के होता है ॥१२३॥जैसे किसी जीव के दसवें गुणस्थान तक ज्ञानावरण की पाँच प्रकृतियों का बंध था, जब वह जीव ग्यारहवें में गया तब बंध का अभाव हुआ, पीछे ग्यारहवें गुणस्थान से पढ़कर फिर दसवें में आया तब ज्ञानावरण की पाँच प्रकृतियों का पुन: बंध हुआ, ऐसा बंध सादि कहलाता है ।जैसे दसवें तक ज्ञानावरण का बंध । दसवें गुणस्थान वाला ग्यारहवें में जब तक प्राप्त नहीं हुआ वहां तक ज्ञानावरण का अनादि बंध है, क्योंकि वहाँ तक अनादिकाल से उसका बंध चला आता है ।

घादितिमिच्छकसाया, भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचऊ ।
सत्तेतालधुवाणं, चदुधा सेसाणयं तु दुधा ॥124॥

अन्वयार्थ : मोहनीय के बिना तीन घातिया कर्मों की 19 प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व तथा 16 कषाय एवं भय, तैजस और अगुरुलघु का जोड़ा अर्थात् भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, अगुरुलघु-उपघात, तथा निर्माण और वर्णादि चार -- ये 47 प्रकृतियाँ ध्रुव हैं । इनका चारों प्रकार का बंध होता है । इनके बिना जो बाकी बची वेदनीय की 2, मोहनीय की 7, आयु की 4 और नामकर्म की गति आदिक 58 तथा गोत्र कर्म की 2 -- ये 73 प्रकृतियाँ अध्रुव हैं । इनके सादि और अध्रुव दो ही बंध होते हैं । इनका किसी समय बंध होता है और किसी समय बंध नहीं भी होता ॥१२४॥

जब तक इनके बंध की व्युच्छित्ति (बिछुड़ना) न हो तब तक इन प्रकृतियों का प्रति समय निरंतर बंध होता ही रहता है, इस कारण इनको ध्रुव कहते हैं ।

सेसे तित्थाहारं, परघादचउक्क सव्वआऊणि ।
अप्पडिवक्खा सेसा, सप्पडिवक्खा हु बासट्ठी ॥125॥
अवरो भिण्णमुहुत्तो, तित्थाहाराण सव्वआऊणं ।
समओ छावट्ठीणं, बंधो तम्हा दुधा सेसा ॥126॥

अन्वयार्थ : 47 ध्रुव प्रकृतियों में से बची हुई शेष 73 प्रकृतियों में तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक, परघात चतुष्क तथा सर्व आयु (4) -

इस प्रकार ये 11 प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षी हैं । शेष बची 62 प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षी हैं ।
तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक एवं सर्व आयु (4) - इन 7 प्रकृतियों के निरंतर बंध होने का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त हैं । शेष 66 प्रकृतियों के निरंतर बंध का जघन्य काल एक समय है । इसीलिये इन सब 73 प्रकृतियों के सादि एवं अध्रुव - ये दो बंध ही कहे गये हैं॥126॥

मूल-कर्म स्थितिबंध

तीसं कोडाकोडी तिघादितदियेसु वीस णामदुगे ।
सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं ॥127॥
अन्वयार्थ : तीन घातिया कर्मों (अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय) का और तीसरे वेदनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । नाम और गोत्र का उत्कृष्ट स्थितिबंध बीस कोड़ाकोड़ी सागर है । मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है और आयु कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध शुद्ध तैंतीस सागर है ॥127॥

उत्तर-प्रकृतियों में स्थितिबंध

दुक्खतिघादीणोघं सादिच्छीमणुदुगे तदद्धं तु ।
सत्तरि दंसणमोहे चरित्तमोहे य चत्तालं ॥128॥
संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं दुहीणमादित्ति ।
अट्ठरसकोडकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च ॥129॥
अरदीसोगे संढे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे ।
वेगुव्वादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुतिचउक्के ॥130॥
इगिपंचेंदियथावरणिमिणासग्गमण अथिरछक्काणं ।
वीसं कोडाकोडीसागरणामाणमुक्कस्सं ॥131॥
हस्सरदिउच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे ।
तस्सद्धमंतकोडाकोडी आहारतित्थयरे ॥132॥
सुरणिरयाऊणोघं णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि ।
उक्कस्सट्ठिदिबंधो सण्णीपज्जत्तगे जोगे ॥133॥कुलयं।
अन्वयार्थ : असाता वेदनीय तथा तीन घातिया कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध ओघ के समान है (30 कोड़ाकोड़ी सागर) । साता वेदनीय, स्त्री वेद एवं मनुष्यद्विक का उससे आधा (15 कोड़ाकोड़ी सागर) है । दर्शनमोह अर्थात् मिथ्यात्व का 70 कोड़ाकोड़ी सागर है । चारित्र मोह अर्थात् 16 कषायों का 40 कोड़ाकोड़ी सागर है ॥128॥
चरम (हुंडक) संस्थान एवं (असंप्राप्तासृपाटिका) संहनन का ओघ के समान (20 कोड़ाकोड़ी सागर) है । अवशेष में 2-2 कम है । विकलत्रिक एवं सूक्ष्मत्रिक का 18 कोड़ाकोड़ी सागर है ॥129॥
अरति, शोक, नपुंसकवेद तथा तिर्यंच, भय, नरक, तैजस, औदारिक, वैक्रियक, आतप - इन 7 द्विकों का; नीच गोत्र एवं त्रस, वर्ण, अगुरुलघु - इन 3 चतुष्क का; एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर षट्क - इन सब प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध 20 कोड़ाकोड़ी सागर है ॥130-131॥
हास्य, रति, उच्च गोत्र, पुरुषवेद, स्थिर षटक, प्रशस्त विहायोगति, देवद्विक का उससे आधा (10 कोड़ाकोड़ी सागर) है । आहारकद्विक एवं तीर्थंकर प्रकृति का अंतः कोड़ाकोड़ी सागर है ॥132॥
देवायु एवं नरकायु का ओघ के समान (33 सागर) है । मनुष्यायु एवं तिर्यंचायु का 3 पल्य है । यह सभी उत्कृष्ट स्थितिबंध संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त योग्य जीव के ही होता है ॥133॥
सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण ।
विवरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु ॥134॥

अन्वयार्थ : सभी प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध यथायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से होता है । जघन्य स्थितिबंध उससे विपरीत (अर्थात् उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों से) होता है । तीन आयु का बंध इससे वर्जित है ॥134॥

सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइट्ठी दु बंधगो भणिदो ।
आहारं तित्थयरं देवाउं वा विमोत्तूण ॥135॥
देवाउगं पमत्तो आहारयमप्पमत्तविरदो दु ।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ ॥136॥
णरतिरिया सेसाउं वेगुव्वियछक्कवियलसुहुमतियं ।
सुरणिरया ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं ॥137॥
देवा पुण एइंदियआदावं थावरं च सेसाणं ।
उक्कस्ससंकिलिट्ठा चदुगदिया ईसिमज्झिमया ॥138॥

अन्वयार्थ : आहारकद्विक, तीर्थंकर प्रकृति, देवायु - इन चार प्रकृतियों को छोड़कर शेष एक सोलह प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टि जीव ही बांधता है । इन चारों की सम्यग्दृष्टि ही बांधता है ॥135॥

देवायु की प्रमत्तविरत जीव बांधता है । आहारकद्विक की अप्रमत्तविरत जीव बांधता है । तीर्थंकर प्रकृति की अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य बांधता है ॥136॥

शेष 3 आयु (नरक, तिर्यंच, मनुष्य), वैक्रियिक षट्क, विकलत्रय तथा सूक्ष्मत्रय को मनुष्य और तिर्यंच बांधता है । औदारिकद्विक, तिर्यंचद्विक, उद्योत तथा असंप्राप्तासृपाटिका संहनन को देव और नारकी बांधता है ॥137॥

एकेंन्द्रिय, आतप और स्थावर को देव बांधता है । शेष प्रकृतियों को उत्कृष्ट संक्लेशी और ईषत्, मध्यम संक्लेशी चारों गतियों के जीव बांधते हैं ॥138॥

बारस य वेयणीये णामे गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता ।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥139॥
लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं ओघं दुगेकदलमासं ।
कोहतिये पुरिसस्स य अट्ठ य वस्सा जहण्णठिदी ॥140॥
तित्थाहाराणंतोकोडाकोडी जहण्णठिदिबंधो ।
खवगे सगसगबंधच्छेदणकाले हवे णियमा ॥141॥
भिण्णमुहुत्तो णरतिरियाऊणं वासदससहस्साणि ।
सुरणिरयआउगाणं जहण्णओ होदि ठिदिबंधो ॥142॥
सेसाणं पज्जत्तो बादरएइंदियो विसुद्धो य ।
बंधदि सव्वजहण्णं सगसगउक्कस्सपडिभागे ॥143॥

अन्वयार्थ : जघन्य स्थितिबंध वेदनीय में बारह मुहूर्त, नाम और गोत्र में आठ मुहूर्त एवं अवशेष पाँच कर्मों में अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । लोभ और सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में जिनका बंध पाया जाता है ऐसी सत्रह प्रकृतियों का मूलप्रकृतिवत् जानना । क्रोध का दो महीना, मान का एक महीना, माया का पंद्रह दिन, पुरुषवेद का आठ वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिबंध जानना॥140॥

तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण है, जो नियम से क्षपक श्रेणी वाले के अपनी-अपनी बंध की व्युच्छित्ति के समय में होता है ॥141॥

मनुष्यायु, तिर्यंचायु का जघन्य स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । देवायु, नरकायु का दस हजार वर्ष प्रमाण है॥142॥

अवशेष इक्यानवे प्रकृतियों में से वैक्रियिकषट्क और एक मिथ्यात्व - इन सात को छोड़कर शेष चौरासी प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध यथायोग्य विशुद्धि का धारक बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव करता है, वहाँ अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति के प्रतिभाग द्वारा त्रैराशिक विधान से जो-जो प्रमाण हो, उतना-उतना जघन्य स्थितिबंध का प्रमाण जानना ॥143॥

नाद को सुनने से आश्चर्य नही करना चाहिए

एयं पणकदि पण्णं सयं सहस्सं च मिच्छवरबंधो ।
इगिविगलाणं अवरं पल्लासंखूणसंखूणं ॥144॥
जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं ।
इदि संपाते सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदी ॥145॥

अन्वयार्थ : मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध - एकेंन्द्रिय जीव एक सागर, द्वीन्द्रिय जीव 25 सागर, त्रीन्द्रिय जीव 50 सागर, चतुरिन्द्रिय जीव 100 सागर तथा पंचेन्द्रिय असंज्ञी जीव 1000 सागर बांधता है । मिथ्यात्व कर्म की जघन्य स्थिति - एकेन्द्रिय जीव तो अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण कम बांधता है तथा द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति से पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कम बांधते है ।
यदि सत्तर का इतना बंधता है तो तीस आदि का कितना बंधेगा? - इस प्रकार त्रैराशिक करने पर शेष एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय में समस्त कर्मों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति का प्रमाण निकल आता है ।

आबाधा

सण्णि असण्णिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा ।
जेट्ठे संखेज्जगुणा आवलिसंखं असंखभागहियं ॥146॥

अन्वयार्थ : संज्ञी, असंज्ञी चतुष्क (असैनी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय) और एकेन्द्रिय में जघन्य आबाधा अंतर्मुहूर्त है । इनमें उत्कृष्ट आबाधा जघन्य आबाधा से संज्ञी आदि उपरोक्त जीवों में क्रम से संख्यात गुणा, आवली के संख्यातवें भाग अधिक तथा आवली के असंख्यातवें भाग अधिक है ॥146॥
एकेन्द्रियादि जीवों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधा का जो प्रमाण कहा उसका भाग कर्मों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति को देने पर जो-जो प्रमाण आता है, वह-वह आबाधाकांडक का प्रमाण है । इतने-इतने स्थिति भेदों में आबाधा का प्रमाण एकरूप पाया जाता है ।
पूर्वोक्त अपने-अपने आबाधा के भेदों के प्रमाण को अपने-अपने आबाधाकांडक के प्रमाण से गुणा करने पर जो-जो प्रमाण आता है, उसमें से एक-एक घटाने पर जो-जो प्रमाण रहता है, उतना-उतना अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति में से घटाने पर जो-जो प्रमाण रहता है, उतना-उतना जघन्य स्थितिबंध का प्रमाण जानना ॥147॥

अन्वयार्थ : जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं तेण ।
आबाहवियप्पहदेणेगूणेणूणजेट्ठमवरठिदी ॥147॥
बासूप-बासूअ-वरट्ठिदीओ सूबाअ-सूबाप-जहण्णकालो ।
बीबीवरो बीबिजहण्णकालो सेसाणमेवं वयणीयमेदं ॥148॥
मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं च संखगुणिदकमा ।
सव्वजुदी संखगुणा हेट्ठुवरिं संखगुणमसण्णित्ति ॥149॥
सण्णिस्स हु हेट्ठादो ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं ।
ठिदिआयामोवि तहा सगठिदिठाणं व आबाहा ॥150॥

अन्वयार्थ : बासूप-बासूअ-वरट्ठिदीओ सूबाअ-सूबाप-जहण्णकालो ।
बीबीवरो बीबिजहण्णकालो सेसाणमेवं वयणीयमेदं ॥148॥
मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं च संखगुणिदकमा ।
सव्वजुदी संखगुणा हेट्ठुवरिं संखगुणमसण्णित्ति ॥149॥
सण्णिस्स हु हेट्ठादो ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं ।
ठिदिआयामोवि तहा सगठिदिठाणं व आबाहा ॥150॥
सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमबादरापुव्वो ।

छव्वेगुव्वमसण्णी जहण्णमाऊण सण्णी वा ॥151॥

अन्वयार्थ : सूक्ष्म-सांपराय गुणस्थान में बंधने वाली ज्ञानावरणादि 17 प्रकृतियों की जघन्य स्थिति को दसवें गुणस्थानवर्ती जीव बाँधता है । पुरुष वेद और संज्वलन-4 की जघन्य स्थिति को नवमें गुणस्थानवर्ती जीव, तीर्थंकर प्रकृति तथा आहारकद्विक की जघन्य स्थिति को आठवें गुणस्थानवर्ती जीव, वैक्रियिकषट्क की जघन्य स्थिति को असैनी पंचेन्द्रिय जीव तथा आयुकर्म की जघन्य स्थिति को संज्ञी तथा असंज्ञी दोनों ही बाँधते हैं ॥151॥

अजघन्यादि स्थिति के भेदों में सादि आदि भेद

अजहण्णट्ठिदिबंधो चउव्विहो सत्तमूलपयडीणं ।
सेसतिये दुवियप्पो आउचउक्केवि दुवियप्पो ॥152॥
संजलणसुहुमचोद्दस-घादीणं चदुविधो दु अजहण्णो ।
सेसतिया पुण दुविहा सेसाणं चदुविधावि दुधा ॥153॥

अन्वयार्थ : आयु के बिना सात मूल प्रकृतियों का अजघन्य स्थितिबंध सादि आदि के भेद से चार तरह का है और बाकी के उत्कृष्ट आदि तीन बंधों के सादि, अध्रुव - ये दो ही भेद हैं । आयुकर्म के उत्कृष्टादिक चार भेदों में स्थितिबंध सादि, अध्रुव - ऐसे दो प्रकार का ही है ॥ 152॥

संज्वलन कषाय की चौकड़ी, दसवें सूक्ष्मसांपराय की मतिज्ञानावरणादि घातिया कर्मों की 14 प्रकृतियाँ - इन 18 प्रकृतियों का अजघन्य स्थितिबंध सादि आदि के भेद से चार प्रकार का है और शेष जघन्यादि तीन भेदों के सादि, अध्रुव - ये दो ही भेद हैं । शेष प्रकृतियों के जघन्यादिक चार भेदों के सादि, अध्रुव दो भेद हैं ॥153॥

सव्वाओ दु ठिदीओ सुहासुहाणंपि होंति असुहाओ ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥154॥

अन्वयार्थ : मनुष्य, तिर्यंच, देवायु के सिवाय बाकी सब शुभ तथा अशुभ प्रकृतियों की स्थितियाँ अशुभरूप ही हैं॥154॥

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूवेण ।
रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे ॥155॥
उदयं पडि सत्तण्हं आबाहा कोडकोडि उवहीणं ।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥156॥

अन्वयार्थ : कार्मणशरीर नामक नामकर्म के उदय से योग द्वारा आत्मा में कर्मस्वरूप से परिणमता हुआ जो पुद्गलद्रव्य जब-तक उदयस्वरूप अथवा उदीरणा स्वरूप न हो तब-तक के उस काल को आबाधा कहते हैं ।

आयुकर्म को छोड़कर सात कर्मों की उदय की अपेक्षा आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति की सौ वर्ष जानना और बाकी स्थितियों की आबाधा इसी प्रतिभाग से जानना ।

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा ।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ॥157॥

अन्वयार्थ : अंत:कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति की अंतर्मुहूर्त आबाधा है । सब जघन्य स्थितियों की उससे संख्यातगुणी कम आबाधा होती है ।

पुण्वाणं कोडितिभा-गादासंखेपअद्ध वोत्ति हवे ।
आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥158॥

अन्वयार्थ : आयुकर्म की आबाधा 1 कोटि पूर्व के तीसरे भाग से लेकर असंक्षेपाद्धा प्रमाण है । (अन्य कर्मों जैसे) आयुकर्म की आबाधा स्थिति के अनुसार भाग की हुई नहीं है ।

आवलियं आबाहा उदीरणमासिज्ज सत्तकम्माणं ।
परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण ॥159॥

अन्वयार्थ : उदीरणा की अपेक्षा से सात कर्मों की आबाधा एक आवली मात्र है और परभव की आयु जो बाँध ली है उसकी उदीरणा

नियम से नहीं होती ।
आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं ।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण ॥160॥
अन्वयार्थ : अपनी-अपनी कर्मों की स्थिति में आबाधा का काल घटाने से जो काल शेष रहे, उतने समय प्रमाण सात कर्मों के निषेक जानना और आयुकर्म के निषेक अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण हैं - ऐसा नियम से समझना ।
आबाहं वोलाविय पढमणिसेगम्मि देय बहुगं तु ।
तत्तो विसेसहीणं बिदियस्सादिमणिसेओत्ति ॥161॥
बिदिये बिदियणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु ।
एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि ॥162॥
अन्वयार्थ : आबाधा काल को छोड़कर जो अनंतर समय है वहाँ पहली गुणहानि के प्रथम निषेक में (अन्य निषेकों से) बहुत अधिक द्रव्य देना । दूसरे निषेक से लेकर दूसरी गुणहानि के प्रथम निषेकपर्यंत विशेष (चय) हीन कर्म परमाणु देना चाहिये ।
द्वितीय गुणहानि के दूसरे निषेक में पहली गुणहानि के चय प्रमाण से आधा चय घटाना चाहिये । (इतने ही चय तीसरी गुणहानि के पहले निषेक तक घटाना चाहिये) । इसी प्रकार गुणहानि-गुणहानि प्रति आधा-आधा अनुक्रम जानना ।

अनुभागबंध

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण ।
विवरीदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥163॥
बादालं तु पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ ।
बासीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥164॥
अन्वयार्थ : शुभ प्रकृतियों का अनुभागबंध विशुद्ध परिणामों से तीव्र(उत्कृष्ट) होता है । अशुभ प्रकृतियों का अनुभागबंध संक्लेश परिणामों से तीव्र होता है । विपरीत परिणामों से जघन्य अनुभागबंध होता है । इस प्रकार सब प्रकृतियों का अनुभागबंध जानना ।
42 प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियाँ हैं उनका तीव्र अनुभागबंध विशुद्धतारूप गुण की उत्कृष्टता वाले जीव के होता है । 82 अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि जीव के तीव्र अनुभाग सहित बंधती हैं ।
आदाओ उज्जोओ मणुवतिरिक्खाउगं पसत्थासु ।
मिच्छस्स होंति तिव्वा सम्माइट्ठिस्स सेसाओ ॥165॥
मणुऔरालदुवज्जं विसुद्धसुरणिरयअविरदे तिव्वा ।
देवाउ अप्पमत्ते खवगे अवसेसबत्तीसा ॥166॥
उवघादहीणतीसे अपुव्वकरणस्स उच्चजससादे ।
संमेलिदे हवंति हु खवगस्सऽवसेसबत्तीसा ॥167॥
मिच्छस्संतिमणवयं णरतिरियाऊणि वामणरतिरिये ।
एइंदियआदावं थावरणामं च सुरमिच्छे ॥168॥
उज्जोवो तमतमगे सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं ।
तिरियदुगं सेसा पुण चदुगदिमिच्छे किलिट्ठे य ॥169॥
अन्वयार्थ : उन 42 प्रशस्त प्रकृतियों में से आतप, उद्योत, मनुष्यायु और तिर्यंचायु - इन चार का बंध विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के होता है । शेष 38 प्रकृतियों का विशुद्ध सम्यग्दृष्टि के होता है ।
सम्यग्दृष्टि की 38 प्रकृतियों में से मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और वज्रऋषभनाराचसंहनन - इन पाँचों का बंध विशुद्ध देव और नारकी असंयत सम्यग्दृष्टि करते है । देवायु का अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती करते है । शेष 32 प्रकृतियों का बंध क्षपकश्रेणी वाले जीव के होता है ।

अपूर्वकरण के छठे भाग की 30 व्युच्छिन्न प्रकृतियों में एक उपघात प्रकृति को छोड़कर शेष 29 प्रकृतियाँ और उच्च गोत्र, यशःकीर्ति, सातावेदनीय - ये सब मिलकर क्षपकश्रेणी वाले के पूर्व गाथा में कही 32 प्रकृतियाँ जानना ।

मिथ्यात्व गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्रकृतियों में से अंत की सूक्ष्मादि 9 प्रकृतियों का और मनुष्यायु, तिर्यंचायु का बंध मिथ्यादृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच करते हैं । एकेन्द्रिय आतप और स्थावर का बंध मिथ्यादृष्टि देव करते हैं ।

सातवें तमस्तमक नामा नरक में उद्योत का, मिथ्यादृष्टि देव व नारकी असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, तिर्यंचद्विक का बाँधते हैं । शेष 68 प्रकृतियों को चारों गति के संक्लेश परिणाम वाले मिथ्यादृष्टि जीव बाँधते हैं ।

वण्णचउक्कमसत्थं उवघादो खवगघादि पणवीसं ।

तीसाणमवरबंधो सगसगवोच्छेदठाणम्हि ॥170॥

अणथीणतियं मिच्छं मिच्छे अयदे हु बिदियकोधादी ।

देसे तदियकसाया संजमगुणपच्छिदे सोलं ॥171॥

आहारमप्पमत्ते पमत्तसुद्धे य अरदिसोगाणं ।

णरतिरिये सुहुमतियं वियलं वेगुव्वछक्काओ ॥172॥

सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्हि तिरियदुगं ।

णीचं च तिगदिमज्झिमपरिणामे थावरेयक्खं ॥173॥

सोहम्मोत्ति य तावं तित्थयरं अविरदे मणुस्सम्हि ।

चदुगदिवामकिलिट्ठे पण्णरस दुवे विसोहीये ॥174॥

परघाददुगं तेजदु तसवण्णचउक्क णिमिणपंचिंदी ।

अगुरुलहुं च किलिट्ठे इत्थिणउंसं विसोहीये ॥175॥

सम्मो वा मिच्छो वा अट्ठ अपरियत्तमज्झिमो य जदि ।

परियत्तमाणमज्झिममिच्छाइट्ठी दु तेवीसं ॥176॥

थिरसुहजससाददुगं उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं ।

संहदिगमणं णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च ॥177॥

अन्वयार्थ : अशुभ वर्णादि चार, उपघात, क्षय होने वाली घातिया कर्मों की 25 (अर्थात् ज्ञानावरण 5, अंतराय 5, दर्शनावरण 4, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, संज्वलन 4) - इन सब 30 प्रकृतियों का अपनी-अपनी बंध-व्युच्छित्ति के स्थान पर जघन्य अनुभागबंध होता है ।

अनंतानुबंधी कषाय , स्त्यानगृद्धादिक 3 और मिथ्यात्व - ये आठ मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में, दूसरी अप्रत्याख्यान कषाय असंयत गुणस्थान में, तीसरी प्रत्याख्यान कषाय देशसंयत गुणस्थान में - इन 16 प्रकृतियों को इन गुणस्थानों में जो संयमगुण के धारने को सम्मुख हुआ है ऐसा विशुद्ध परिणाम वाला जीव बाँधता है ।

आहारकद्विक प्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुए संक्लेशपरिणाम वाले अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती के; अरति, शोक अप्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुए विशुद्ध प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव के बंधती हैं । सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, वैक्रियिक षट्क और 4 आयु - ये सोलह प्रकृतियाँ मनुष्य अथवा तिर्यंच के बंधती हैं ।

देव और नारकी के उद्योत, औदारिकद्विक, सातवें तमस्तमक नरक में तिर्यंचद्विक, नीचगोत्र और नारकी के बिना तीन गति वाले तीव्र विशुद्धि और संक्लेश से रहित मध्यमपरिणामी जीवों के स्थावर, एकेन्द्रिय बंधती हैं ।

भवनत्रिक से लेकर सौधर्मद्विक तक के देवों के आतप, नरक जाने को सम्मुख हुए अविरत गुणस्थानवर्ती मनुष्य के तीर्थंकर प्रकृति, चारों गति के संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टि जीवों के 15 प्रकृतियाँ और चारों गति के विशुद्ध परिणामी जीवों के दो प्रकृतियाँ बंधती हैं ।

परघात, उच्छ्वास, तैजसद्विक, त्रस चतुष्क, शुभ वर्णादि चतुष्क, निर्माण, पंचेंद्री और अगुरुलघु - ये 15 संक्लेशपरिणामी जीव के तथा स्त्रीवेद, नपुंसकवेद - ये दो विशुद्धपरिणामी जीव के बंधती हैं ।

आगे की गाथा में जो 31 प्रकृति कहेंगे, उनमें से पहली आठ प्रकृतियों को अपरिवर्तमान मध्यमपरिणाम वाला सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है । शेष 23 प्रकृतियों को परिवर्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव ही बाँधता है ।
स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, सातावेदनीय - इन चारों का जोड़ा सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि इन दोनों के बंधती है । उच्च गोत्र, 6 संस्थान, 6 संहनन, विहायोगति का जोड़ा, तथा मनुष्यगति-स्वर-सुभग-आदेय - इन चारों का जोड़ा, सब मिलकर 23 प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि के ही होता है ।

अजघन्य, अनुत्कृष्ट, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव अनुभाग

घादीणं अजहण्णोऽणुक्कस्सो वेयणीयणामाणं ।
अजहण्णमणुक्कस्सो गोदे चदुधा दुधा सेसा ॥178॥
अन्वयार्थ : चारों घातिया कर्मों का अजघन्य अनुभागबंध, वेदनीय और नामकर्म का अनुत्कृष्ट अनुभागबंध, और गोत्रकर्म का अजघन्य तथा अनुकृष्ट अनुभागबंध - इन सबका सादि, अनादि, ध्रुव,अध्रुव के भेद से चार प्रकार का बंध हैं और शेष के सादि और अध्रुव दो ही प्रकार हैं ॥178॥
सत्थाणं धुवियाणमणुक्कस्समसत्थगाण धुवियाणं ।
अजहण्णं च य चदुधा सेसा सेसाणयं च दुधा ॥179॥
अन्वयार्थ : ध्रुव बंधी 8 प्रशस्त प्रकृतियों के अनुकृष्ट अनुभागबंध के, ध्रुव बंधी 39 अप्रशस्त प्रकृतियों के अजघन्य अनुभागबंध के सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव चार प्रकार का हैं । ध्रुव बंधी प्रकृतियों के जघन्यादि तीन भेद तथा 73 अध्रुव प्रकृतियों के जघन्यादि चारों भेद - इन सबके सादि और अध्रुव ये दो ही प्रकार हैं ।

अनुभाग-बंध में शक्ति-भेद के उदाहरण

सत्ती य लदादारूअट्ठीसेलोवमाहु घादीणं ।
दारूअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं ॥180॥
अन्वयार्थ : घातिया कर्मों की फल देने की शक्ति (स्पर्द्धक) लता, दारू, अस्थि और शैल की उपमा वाले चार प्रकार की होती हैं । लता से दारू भाग के अनंतवें भाग तक शक्तिरूप स्पर्द्धक देशघाति हैं और शेष बहुभाग से लेकर शैलभाग तक के स्पर्द्धक सर्वघाति हैं ।

पुण्य-पाप के भेद

देसोत्ति हवे सम्मं तत्तो दारूअणंतिमे मिस्सं ।
सेसा अणंतभागा अट्ठिसिलाफड्ढया मिच्छे ॥181॥
आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं ।
चदुविधभावपरिणदा तिविधा भावा हु सेसाणं ॥182॥
अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा ।
ता एव पुण्णपावा सेसा पावा मुणेयव्वा ॥183॥
अन्वयार्थ : मिथ्यात्व प्रकृति के लता भाग से दारू भाग के अनंतवें भाग तक देशघाति स्पर्द्धक हैं, वे सब सम्यक्त्व प्रकृतिरूप हैं । दारूभाग के अनंत बहुभाग के अनंतवें भागप्रमाण जुदी जाति के ही सर्वघाति स्पर्द्धक मिश्र प्रकृति के जानना । शेष अनंत बहुभाग तथा अस्थिभाग, शैलभागरूप स्पर्द्धक मिथ्यात्व प्रकृति के होते हैं ।
आवरणों में देशघाति की 7 प्रकृतियाँ (4 ज्ञानावरण, 3 दर्शनावरण), अंतराय 5, संज्वलन 4 और पुरुषवेद - ये 17 प्रकृतियाँ शैल आदि चारों तरह के भावरूप परिणमन करती हैं और शेष सब प्रकृतियों के शैल आदि तीन भावरूप परिणमन होते हैं,(केवल लतारूप परिणमन नहीं होता) ।
शेष अघातिया कर्मों की प्रकृतियाँ घातिया कर्मों की तरह प्रतिभागसहित जाननी **अर्थ**ात् तीन भावरूप परिणमती हैं और वे ही पुण्यरूप

तथा पापरूप होती हैं । तथा घातिया कर्मों की सब प्रकृतियाँ पापरूप ही हैं ।

कर्मों मे पुण्यरूप-पापरूप अनुभाग

गुडखंडसक्करामियसरिसा सत्था हु णिंबकंजीरा ।
विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघादिपडिभागा ॥184॥

अन्वयार्थ : अघातिया कर्मों में प्रशस्त प्रकृतियों के शक्तिभेद गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत के समान जानने । अप्रशस्त प्रकृतियों के निंब, कांजीर, विष, हलाहल के समान शक्तिभेद (स्पर्द्धक) जानना ॥184॥

कर्मरूप पुद्गलों का आत्मा के प्रदेशों के साथ संबंध होना

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं ।
बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं ॥185॥
एयसरीरोगाहियमेयक्खेत्तं अणेयखेत्तं तु ।
अवसेसलोयखेत्तं खेत्तणुसारिट्ठियं रूवी ॥186॥

अन्वयार्थ : एकक्षेत्र में अवगाहरूप रहनेवाले जो कर्मरूप परिणमने योग्य अनादि, सादि और उभयरूप पुद्गलद्रव्य सर्व प्रदेशों द्वारा (मिथ्यात्वादिक) के निमित्त से बांधता है ॥185॥

एक शरीर की अवगाहना द्वारा रोका हुआ जो आकाश उसे एक क्षेत्र कहते हैं । अवशेष लोक को अनेकक्षेत्र कहते हैं । उस-उस क्षेत्र के अनुसार रहनेवाला रूपी जो पुद्गलद्रव्य उसका परिमाण त्रैराशिक से जानना ॥186॥

क्षेत्र में पुद्गल द्रव्य का परिमाण

एयाणेयक्खेत्तट्ठियरूविअणंतिमं हवे जोग्गं ।
अवसेसं तु अजोग्गं सादि अणादी हवे तत्थ ॥187॥

अन्वयार्थ : एक तथा अनेक क्षेत्रों में ठहरा हुआ जो पुद्गलद्रव्य उसके अनंतवें भाग पुद्गल परमाणुओं का समूह कर्मरूप होने योग्य है और शेष (अनंत बहुभाग प्रमाण) द्रव्य कर्मरूप होने के अयोग्य है । सभी (चारों) भेदों में सादि द्रव्य व अनादि द्रव्य जानना ॥187॥

योग्य और अयोग्य द्रव्य का परिमाण

जेट्ठे समयपबद्धे अतीदकाले हदेण सव्वेण ।
जीवेण हदे सव्वं सादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥188॥

अन्वयार्थ : (उत्कृष्ट योगों के परिणमन से उत्पन्न) जो उत्कृष्ट समयप्रबद्ध प्रमाण को अतीत काल के समयों से गुणा करें । फिर जो प्रमाण आवे उसे सब जीवराशि से गुणा करने पर सब जीवों के सादि द्रव्य का प्रमाण होता है ॥188॥

सादि और अनादि द्रव्य का परिमाण

सगसगखेत्तगयस्स य अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी ।
सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥189॥

अन्वयार्थ : अपने-अपने एक तथा अनेक-क्षेत्र में रहनेवाले पुद्गल द्रव्य के अनंतवें भाग योग्य सादि द्रव्य है और शेष (अनंत बहुभाग) अयोग्य सादि द्रव्य है - ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥189॥

योग्य और अयोग्य सादि / अनादि द्रव्य का परिमाण

सगसगसादिविहीणे जोग्गाजोग्गे य होदि णियमेण ।
जोग्गाजोग्गाणं पुण अणादिदव्वाण परिमाणं ॥190॥

अन्वयार्थ : अपने-अपने क्षेत्र स्थित योग्य और अयोग्य द्रव्य में से सादि योग्य और सादि अयोग्य द्रव्य को कम करने से अपना-अपना अनादि योग्य और अनादि अयोग्य द्रव्य का परिमाण होता है ॥190॥

समयप्रबद्ध में किस प्रकार के परमाणुओं का ग्रहण

सयलरसरूवगंधेहिं परिणदं चरमचदुहिं फासेहिं ।
सिद्धादोऽभव्वादोऽणंतिमभागं गुणं दव्वं ॥191॥
अन्वयार्थ : वह समयप्रबद्ध सर्व - पाँच प्रकार के रस, पाँच प्रकार के वर्ण, दो प्रकार की गंध तथा शीतादि चार अंत के स्पर्श - इन से सहित परिणमता हुआ, सिद्धराशि के अनंतवें भाग अथवा अभव्य राशि से अनंतगुणा कर्मरूप पुद्गलद्रव्य जानना ॥191॥

समयप्रबद्ध

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो ।
घादितियेवि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिये ॥192॥
सुहदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स ।
सव्वेहिंतो बहुगं दव्वं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥193॥
सेसाणं पयडीणं ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु ।
आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण ॥194॥
बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥195॥
अन्वयार्थ : सब मूल प्रकृतियों में आयुकर्म का हिस्सा थोड़ा है । नाम और गोत्र कर्म का हिस्सा आपस में समान है, तो भी आयुकर्म के भाग से अधिक है । अंतराय-दर्शनावरण-ज्ञानावरण इन तीन घातिया कर्मों का भाग आपस में समान है, तो भी नाम-गोत्र के भाग से अधिक है । इससे अधिक मोहनीय कर्म का भाग है तथा मोहनीय से भी अधिक वेदनीय कर्म का भाग है ॥192॥
वेदनीय कर्म सुख-दुःख में निमित्त होता है, इसलिये इसकी निर्जरा भी बहुत होती है । इसीलिए सब कर्मों से अधिक द्रव्य इस वेदनीय कर्म का होता है; ऐसा परमागम में कहा है ॥193॥
वेदनीय को छोड़कर शेष सब मूल प्रकृतियों के स्थिति प्रतिभाग से द्रव्य होता है । इनके विभाग करने में प्रतिभागहार नियम से आवलि के असंख्यातवें भाग प्रमाण जानना ॥194॥
बहुभाग का समान भाग करके आठ प्रकृतियों को देना और शेष एकभाग में पहले कहे हुए क्रम से (आवली के असंख्यातवें भाग का) भाग देते जाना । उसमें भी जो बहुत द्रव्य वाला हो उसको बहुभाग देना । ऐसा अंत तक प्रतिभाग करते जाना ॥195॥

उत्तर प्रकृतियों में बँटवारे का क्रम

सव्वावरणं दव्वं अणंतभागो दु मूलपयडीणं ।
सेसा अणंतभागा देसावरणं हवे दव्वं ॥197॥
अन्वयार्थ : ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय - इन तीन मूल प्रकृतियों के अपने-अपने द्रव्य में यथायोग्य अनंत का भाग देने से एक भाग सर्वघाति का द्रव्य होता है और शेष अनंत बहुभाग प्रमाण द्रव्य देशघाति प्रकृतियों का है ॥197॥

मतिज्ञानावरणादि 25 देशघाति प्रकृतियों का गुणहानि क्रम से विभाजन

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणंतसंखमेत्तं खु ।
सव्वावरणधणट्ठं पडिभागो होदि घादीणं ॥198॥
अन्वयार्थ : चार ज्ञानावरणादि देशघाति प्रकृतियों की अन्योन्याभ्यस्तराशि अनंत संख्या-प्रमाण है । वही राशि सर्वघाती प्रकृतियों के द्रव्य-प्रमाण को निकालने के लिये घातिया कर्मों का प्रतिभाग जानना॥198॥

सव्वावरणं दव्वं विभंजणिज्जं तु उभयपयडीसु ।
देसावरणं दव्वं देसावरणेसु णेविदरे ॥199॥
बहुभागे समभागो बंधाणं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥200॥

अन्वयार्थ : सर्वघाती द्रव्य का सर्वघाती और देशघाति दोनों प्रकृतियों में विभाग करके देना । देशघाति द्रव्य का विभाग देशघाति में ही देना, सर्वघाति (केवलज्ञानावरणादि) प्रकृतियों में नहीं देना ॥199॥

जिनका एक समय में बंध हो उन प्रकृतियों में अपने-अपने पिंड-द्रव्य के बहुभाग को तो बराबर बाँटकर अपनी-अपनी उत्तर प्रकृतियों में समान द्रव्य देना और शेष एक भाग में भी पूर्व कहे क्रम से ही भाग कर-करके बहुभाग बहुत द्रव्य वाले को देना ॥200॥

वेदनीय, आयु, गोत्र उत्तर प्रकृतियों में विभाग

घादितियाणं सगसग-सव्वावरणीयसव्वदव्वं तु ।
उत्तकमेण य देयं, विवरीयं णामविग्घाणं ॥201॥

अन्वयार्थ : ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय -- इन 3 घातिया कर्मों का क्रम से प्रथम प्रकृति से अंत की प्रकृति पर्यंत अपना-अपना सर्वघाती द्रव्य घटता-घटता देना । और नाम तथा अंतराय की प्रकृतियों का द्रव्य विपरीत अर्थात् प्रथम प्रकृति से अंत की प्रकृति पर्यंत बढ़ता-बढ़ता अथवा अंत से लेकर आदि प्रकृति पर्यन्त घटता-घटता देना ॥२०१॥

मोहनीय कर्म की रचना

मोहे मिच्छत्तादीसत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं ।
संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं ॥202॥
संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं ।
इगिभागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं ॥203॥

अन्वयार्थ : मोहनीय कर्म में मिथ्यात्वादि सत्रह प्रकृतियों को क्रम से हीन-हीन द्रव्य देना और पाँच नोकषाय का भाग संज्वलन कषाय के भाग के समान जानना ॥202॥

मोहनीय कर्म के देशघाति बहुभाग का आधा नोकषाय देशघाति द्रव्य जानना । और शेष एक भाग सहित आधा बहुभाग संज्वलन कषाय का देशघाति संबंधी द्रव्य होता है ॥203॥

तण्णोकसायभागो सबंधपणणोकसायपयडीसु ।
हीणकमो होदि तहा देसे देसावरणदव्वं ॥204॥
पुंबंधऽद्धा अंतोमुहुत्त इत्थिम्हि हस्सजुगले य ।
अरदिदुगे संखगुणा णपुंसकऽद्धा विसेसहिया ॥205॥

अन्वयार्थ : वह नोकषाय के हिस्सा में आया हुआ द्रव्य एकसाथ बंधने वाली पाँच नोकषाय प्रकृतियों में क्रम से हीन-हीन देना । और इसी प्रकार देशघाती संज्वलन कषाय का देशघाती संबंधी जो द्रव्य है वह युगपत् जितनी प्रकृति बँधे उनको पहले कहे हीन क्रम से देना ॥204॥

पुरुषवेद के निरंतर बंध होने का काल अंतर्मुहूर्त है (यह अंतर्मुहूर्त सबसे छोटा समझना) । स्त्रीवेद का उससे संख्यात गुणा, हास्य और रति का काल उससे भी संख्यात गुणा,अरति और शोक का उससे भी संख्यात गुणा; किंतु अंतर्मुहूर्त ही है और नपुंसकवेद का काल उससे भी कुछ अधिक जानना ॥205॥

नामकर्म की रचना

पणविग्घे विवरीयं सबंधपिंडिदरणामठाणेवि ।

पिंडं दव्वं च पुणो सबंधसगपिंडपयडीसु ॥206॥
अन्वयार्थ : पाँच अंतराय में विपरीत (अंत से लेकर आदि तक) क्रम जानना । नामकर्म के स्थानों में जो एक ही काल में बंध को प्राप्त होने वाली गत्यादि पिंडरूप और अगुरुलघु आदि अपिंडरूप प्रकृतियाँ हैं उनमें भी विपरीत ही क्रम जानना ॥206॥

मूल कर्म में उत्कृष्टादि प्रदेशबंध के सादि आदि भेद

छण्हंपि अणुक्कस्सो पदेसबंधो दु चदुवियप्पो दु ।
सेसतिये दुवियप्पो मोहाऊणं च दुवियप्पो ॥207॥
अन्वयार्थ : ज्ञानावरणादि छह कर्मों का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध सादि आदि के भेद से चार प्रकार का है, बाकी उत्कृष्टादि तीन बंध सादि अध्रुव के भेद से दो प्रकार के हैं । मोहनीय तथा आयुकर्म के उत्कृष्टादि चारों ही भेद सादि आदि दो प्रकार के हैं ॥207॥

उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्टादि प्रदेशबंध के सादि आदि भेद

तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपयडीसु चउविहो बंधो ।
सेसतिये दुवियप्पो सेसचउक्केवि दुवियप्पो ॥208॥
णाणंतरायदसयं दंसणछक्कं च मोहचोद्दसयं ।
तीसण्हमणुक्कस्सो पदेसबंधो चदुवियप्पो ॥209॥
अन्वयार्थ : उत्तर प्रकृतियों में तीस प्रकृतियों का अनुकृष्टबंध सादि आदि चार प्रकार का है । शेष उत्कृष्टादि तीन के सादि अध्रुव ये दो ही प्रकार हैं । शेष बची 90 प्रकृतियों का उत्कृष्टादि चारों तरह का बंध सादि और अध्रुव प्रकार का है ॥208॥
ज्ञानावरण और अंतराय की 10, दर्शनावरण की 6, मोहनीय की अप्रत्याख्यानादि 14, सब मिलकर 30 प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध चार प्रकार का है ॥209॥

प्रदेशबंध की उत्कृष्ट सामग्री

उक्कडजोगो सण्णी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पदरो ।
कुणदि पदेसुक्कस्सं जहण्णये जाण विवरीयं ॥210॥
अन्वयार्थ : जो जीव उत्कृष्ट योगों से सहित, संज्ञी, पर्याप्त और थोड़ी प्रकृतियों का बंध करने वाला होता है, वही जीव उत्कृष्ट प्रदेशबंध को करता है । तथा जघन्य प्रदेशबंध में इससे विपरीत जानना ॥210॥

मूल प्रकृतियों में उत्कृष्ट प्रदेशबंध

आउक्कस्स पदेसं छक्कं मोहस्स णव दु ठाणाणि ।
सेसाण तणुकसाओ बंधदि उक्कस्सजोगेण ॥211॥
अन्वयार्थ : आयुकर्म का उत्कृष्ट प्रदेशबंध छ: गुणस्थानों में रहने वाला करता है । मोहनीय का नवमें गुणस्थानवर्ती करता है । और शेष ज्ञानावरणादि छह कर्मों का सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती करता है । यहाँ सब जगह उत्कृष्ट योग द्वारा ही बंध जानना ॥211॥
मूल प्रकृतियों में उत्कृष्ट प्रदेशबंध के गुणस्थान कर्म गुणस्थान आयु 7 मोहनीय 9 शेष 6 कर्म 10

उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्ट प्रदेशबंध के गुणस्थान

सत्तर सुहुमसरागे पंचऽणियट्टिम्हि देसगे तदियं ।
अयदे बिदियकसायं होदि हु उक्कस्सदव्वं तु ॥212॥
छण्णोकसायणिापयलातित्थं च सम्मगो य जदी ।
सम्मो वामो तेरं णरसुरआऊ असादं तु ॥213॥
देवचउक्कं वज्जं समचउरं सत्थगमणसुभगतियं ।

आहारमप्पमत्तो सेसपदेसुक्कडो मिच्छो ॥214॥

अन्वयार्थ : 17 प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में होता है । (पुरुषवेदादि)पाँच का नवमें गुणस्थान में, प्रत्याख्यान-4 का देशविरत गुणस्थान में, अप्रत्याख्यान-4 कषायों का चौथे असंयत गुणस्थान में उत्कृष्ट प्रदेशबंध होता है ॥212॥
छ: नोकषाय, निद्रा, प्रचला, और तीर्थंकर प्रकृति - इन नौ का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सम्यग्दृष्टि करता है । तथा मनुष्यायु, देवायु, असाता वेदनीय, देवचतुष्क, वज्रऋषभनाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभगत्रिक - इन तेरह प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि दोनों ही करते हैं । और आहारकद्विक का उत्कृष्ट प्रदेशबंध अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करता है । इन 54 के बिना अवशेष 66 प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबंध मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट योगों से करता है ॥213-214॥
उत्तर प्रकृतियों में उत्कृष्ट प्रदेशबंध के गुणस्थान उत्तर प्रकुतियाँ कुल गुणस्थान 5 ज्ञानावरण, 4 दर्शनावरण, 5 अंतराय, यश:कीर्ति, उच्च गोत्र, सातावेदनीय 17 10 पुरुषवेद, 4 संज्वलन कषाय 5 9 4 प्रत्याख्यानावरण कषाय 4 5 4 अप्रत्याख्यानावरण कषाय 4 4 3 वेद छोड़कर 6 नोकषाय, निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर प्रकृति 9 सम्यग्दृष्टि मनुष्यायु, देवायु, असातावेदनीय, देवचतुष्क(4), वज्रऋषभनाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभगत्रिक 13 सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों आहारकद्विक 2 उपरोक्त 54 छोड़कर शेष प्रकृतियाँ 66 मिथ्यादृष्टि

जघन्य प्रदेशबंध

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णये जोगे ।
सत्तण्हं तु जहण्णं आउगबंधेवि आउस्स ॥215॥
घोडणजोगोऽसण्णी णिरयदुसुरणिरयआउगजहण्णं ।
अपमत्तो आहारं अयदो तित्थं च देवचऊ ॥216॥
चरिमअपुण्णभवत्थो तिविग्गहे पढमविग्गहम्मि ठिओ ।
सुहमणिगोदो बंधदि सेसाणं अवरबंधं तु ॥217॥

अन्वयार्थ : सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के अपने पर्याय के पहले समय में जघन्य योगों से आयु के सिवाय सात मूल प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध होता है । आयु का बंध होने पर उसी जीव के आयु का भी जघन्य प्रदेशबंध होता है ।
मूल और उत्तर प्रकृतियों में जघन्य प्रदेशबंध स्वामी कर्म स्वामी आयु सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव के आयु बंध के समय शेष 7 कर्म सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तक पर्याय के पहले समय में जघन्य योग द्वारा
घोटमान योगों का धारी असैनी जीव नरकद्विक, देवायु तथा नरकायु का जघन्य प्रदेशबंध करता हैं । और आहारकद्विक का अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती तथा चौथे असंयत गुणस्थानवर्ती तीर्थंकर प्रकृति और देव-चतुष्क इस तरह पाँच प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध करता है ॥216॥
छह हजार बारह अपर्याप्त (क्षुद्र) भवों में से अंत के भव में स्थित और विग्रहगति के तीन मोड़ों में से पहली वक्रगति में ठहरा हुआ जो सूक्ष्मनिगोदिया जीव है वह पूर्वोक्त 11 से शेष रही 109 प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबंध करता है ॥217॥
उत्तर प्रकृतियों में जघन्य प्रदेशबंध के स्वामी उत्तर प्रकुतियाँ कुल गुणस्थान नरकगतिद्विक, देवायु, नरकायु 4 घोटमान योगस्थान का धारक असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव आहारकद्विक 2 अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीव तीर्थंकर प्रकृति, देवचतुष्क 4 पर्याय के प्रथम समय में जघन्य उपपाद योग का धारक असंयत सम्यग्दृष्टि जीव शेष सभी 109 अंतिम क्षुद्र भव के पहले मोड़ में स्थित सूक्ष्मनिगोदिया जीव

योगस्थान

जोगट्ठाणा तिविहा उववादेयंतवड्ढिपरिणामा ।
भेदा एक्केक्कंपि चोसभेदा पुणो तिविहा ॥218॥

अन्वयार्थ : उपपाद योगस्थान, एकांतानुवृद्धि योगस्थान, परिणाम योगस्थान - इस प्रकार योगस्थान तीन प्रकार के हैं । और एक-एक भेद के भी 14 जीवसमास की अपेक्षा चौदह-चौदह भेद हैं । तथा ये 14 भी सामान्य, जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा तीन-तीन प्रकार के हैं ।

14 जीव समासों की अपेक्षा योगस्थान उपपाद एकांतानुवृद्धि परिणाम सामान्य 14 14 14 सामान्य, जघन्य 28 28 28 सामान्य, जघन्य एवं उत्कृष्ट 42 42 42

योगस्थान

उववादजोगठाणा भवादिसमयट्ठियस्स अवरवरा ।
विग्गहइजुगइगमणे जीवसमासे मुणेयव्वा ॥219॥
परिणामजोगठाणा सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति ।
लद्धिअपज्जत्ताणं चरिमतिभागम्हि बोधव्वा ॥220॥
सगपज्जत्तीपुण्णे उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं ।
सव्वत्थ होदि अवरं लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठंपि ॥221॥
एयंतवड्ढिठाणा उभयट्ठाणाणमंतरे होंति ।
अवरवरट्ठाणाओ सगकालादिम्हि अंतम्हि ॥222॥

अन्वयार्थ : पर्याय धारण करने के पहले समय में स्थित जीव के उपपाद योगस्थान होता हैं । वक्रगति से उत्पन्न के जघन्य (उपपाद योगस्थान) और ऋजुगति वाले के उत्कृष्ट (उपपाद योगस्थान) होता है । वे उपपाद योगस्थान चौदह जीवसमासों में जानना ।
शरीरपर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर आयु के अंत तक परिणामयोगस्थान हैं । लब्ध्यपर्याप्त जीव के अपनी आयु के अंत के त्रिभाग के प्रथम समय से लेकर अंत के समय तक जानना ।
अपनी-अपनी शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर ऊपर आयु के अंत समय तक सम्पूर्ण समयों में परिणामयोगस्थान उत्कृष्ट भी होते हैं और जघन्य भी हो सकता है । और इसी तरह लब्ध्यपर्याप्तक के भी अपनी स्थिति के सब भेदों में दोनों परिणामयोगस्थान संभव हैं ।
एकांतानुवृद्धि योगस्थान, उपपाद और परिणाम दोनों स्थानों के बीच में, **अर्थ**ात् पर्यायधारण करने के दूसरे समय से लेकर एक समय कम शरीर पर्याप्ति के अंतर्मुहूर्त के अंतिम समय तक होते हैं । उनमें जघन्यस्थान तो अपने काल के पहले समय में और उत्कृष्ट स्थान अंतिम समय में होता है ।

प्रत्येक योगस्थान में पाँच भेद

अविभागपडिच्छेदो वग्गो पुण वग्गणा य फड्डयगं ।
गुणहाणीवि य जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण ॥223॥
पल्लासंखेज्जदिमा गुणहाणिसला हवंति इगिठाणे ।
गुणहाणिफड्डयाओ असंखभागं तु सेढीये ॥224॥
फड्डयगे एक्केक्के वग्गणसंखा हु तत्तियालावा ।
एक्केक्कवग्गणाए असंखपदरा हु वग्गाओ ॥225॥
एक्केक्के पुण वग्गे असंखलोगा हवंति अविभागा ।
अविभागस्स पमाणं जहण्णउड्ढी पदेसाणं ॥226॥

अन्वयार्थ : सर्व योगस्थान जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । उनमें एक-एक स्थान के प्रति अविभाग-प्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि - इतने भेद, नियम से होते है ऐसा जानना ॥223॥
एक योगस्थान में गुणहानि की शलाका (संख्यायें) पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । एक गुणहानि में स्पर्धक जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥224॥
एक-एक स्पर्धक में वर्गणाओं की संख्या उतनी ही **अर्थ**ात् जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । और एक-एक वर्गणा में असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण वर्ग हैं ॥225॥

एक-एक वर्ग में असंख्यातलोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं । और अविभाग प्रतिच्छेद का प्रमाण प्रदेशों में जघन्य वृद्धि-स्वरूप जानना ॥226॥

एक - एक योगस्थान में पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण नानागुणहानियाँ हैं गुणहानि में जगतश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्धक हैं स्पर्धक में जगतश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण वर्गणायें हैं वर्गणा में असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण वर्ग है वर्ग में असंख्यात लोकप्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद है

स्वरूप भेद प्रमाण जिसका दूसरा भाग न हो सके, ऐसा (प्रदेशों में कर्म ग्रहण की) शक्ति का जो अंश = अविभाग प्रतिच्छेद = प्रदेशों की जघन्य वृद्धि रूप अविभाग प्रतिच्छेदों का समूह = वर्ग = असंख्यात लोकप्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद वर्गों का समूह = वर्गणा = असंख्यात जगतप्रतर वर्ग वर्गणाओं का समूह = स्पर्धक = (जगतश्रेणी / असं.) वर्गणा स्पर्धकों का समूह = गुणहानि = (जगतश्रेणी / असं.) स्पर्धक गुणहानियों का समूह = स्थान (लोकप्रमाण जीव के सर्व प्रदेश) = पल्य असं. गुणहानि सर्व योगस्थान = जगतश्रेणी / असं.

योगस्थान में वर्गणादि का प्रमाण

इगिठाणफड्ढयाओ वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी ।

सेढिअसंखेज्जदिमा असंखलोगा हु अविभागा ॥227॥

अन्वयार्थ : एक योगस्थान में सब स्पर्धक, सब वर्गणाओं की संख्या और गुणहानि-आयाम का प्रमाण सामान्यपने से जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र है । एक योगस्थान में अविभाग-प्रतिच्छेद असंख्याततलोक प्रमाण होते हैं ॥227॥

योगस्थान में वर्गणादि का प्रमाण प्रमाण एक योगस्थान में सर्व (नाना) गुणहानि पल्य / असं. उत्तरोत्तर असं. गुणा-असं. गुणा अधिक

 सर्व स्पर्धक = नाना गुणहानि * एक गुणहानि के स्पर्धकों का प्रमाण

= (पल्य / असं.) * (जगतश्रेणी / असं.)

= जगतश्रेणी / असं. सर्व वर्गणा = एक योगस्थान के स्पर्धक * एक स्पर्धक की वर्गणा का प्रमाण

= (जगतश्रेणी / असं.) * (जगतश्रेणी / असं.)

= जगतश्रेणी / असं. सर्व अविभाग प्रतिच्छेद = असंख्याततलोक

(कर्म परमाणुओं के प्रमाणवत् या जघन्यज्ञान के प्रमाणवत् अनंत नहीं) असं. प्रदेशों में गुणहानि आयाम = एक गुणहानि में वर्गणा का प्रमाण

= जगतश्रेणी / असं.

योगस्थान में गुणहानि रचना का वर्णन

सव्वे जीवपदेसे दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा ।

उवरिं उत्तरहीणं गुणहाणिं पडि तदद्धकमं ॥228॥

फड्ढयसंखाहि गुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी ।

बिदियादिवग्गणाणं वग्गा अविभागअहियकमा ॥229॥

अन्वयार्थ : सब लोक प्रमाण (असंख्यात) जीव के प्रदेशों को डेढ़गुणहानि का भाग देने पर पहली गुणहानि की पहली वर्गणा होती है । इसके बाद एक-एक चय घटाने पर द्वितीयादि वर्गणाओं का प्रमाण होता है । और पूर्व गुणहानि से उत्तर गुणहानि का प्रमाण क्रम से आधा-आधा जानना ॥228॥

जघन्य वर्ग को अपने-अपने स्पर्द्धक की संख्या से गुणा करने पर उस-उस गुणहानि की पहली वर्गणा का प्रमाण होता है । और दूसरी आदि वर्गणा क्रम से वर्ग में एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद बढ़ाने पर होती है ॥229॥

प्रदेशों (परमाणुओं की संख्या) की अपेक्षा अंकसंदृष्टि द्वारा वर्णन जीव के सर्व प्रदेश = 3100 नाना गुणहानि = 5 एक गुणहानि आयाम = 8 अन्योन्याभ्यस्तराशि = $2^{\text{नाना गुणहानि}} = 2^5 = 32$ अंतिम गुणहानि में प्रदेशों का प्रमाण = (सर्व द्रव्य) / (अन्योन्याभ्यस्त राशि-1)

= 3100 / (32-1)
=100
प्रत्येक गुणहानि का द्रव्य गुणहानि प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ पंचम (अंतिम) द्रव्य 1600 800 400 200 100 अंतिम गुणहानि के द्रव्य से दोगुणा-दोगुणा द्रव्य प्रथम गुणहानि तक करना
प्रत्येक गुणहानि की रचना का विधान प्रथम गुणहानि प्रथम स्पर्द्धक प्रथम वर्गणा का प्रमाण = सर्व द्रव्यकुछ अधिक डेढ़ गुणहानि
= सर्व द्रव्यकुछ अधिक डेढ़ गुणित 8
= 3100 / 12764
= 256 (जघन्य अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति के प्रदेश) विशेष (चय) = प्रथम वर्गणा / दो गुणहानि
= 256 / 16
= 16 द्वितीय वर्गणा = प्रथम वर्गणा - चय
= 256 - 16
= 240 (जघन्य से एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति के प्रदेश) तृतीयादि वर्गणा इसी प्रकार एक-एक चय घटाने पर और एक एक अविभाग प्रतिच्छेद से अधिक शक्ति से युक्त कुल वर्गणा का प्रमाण = जगतश्रेणी / असं. द्वितीय स्पर्द्धक प्रथम वर्गणा प्रथम स्पर्द्धक के प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद से दोगुणे अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति से युक्त वर्ग द्वितीयादि वर्गणा आगे-आगे एक-एक चय घटता और एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद से अधिक तृतीय स्पर्द्धक प्रथम वर्गणा प्रथम स्पर्द्धक के प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद से तीगुणे अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति से युक्त वर्ग चतुर्थादि स्पर्द्धक प्रथम वर्गणा प्रथम स्पर्द्धक के प्रथम वर्गणा के अविभाग प्रतिच्छेद से चौगुणे आदि जो विवक्षित स्पर्द्धक हो : इसी अनुक्रम से वर्गणाओं और स्पर्द्धक का प्रमाण जानना अंतिम स्पर्द्धक अंतिम वर्गणा प्रथम वर्गणा में एक कम गुणहानि प्रमाण चय घटता और इतने ही अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ता है द्वितीय गुणहानि प्रथम स्पर्द्धक प्रथम वर्गणा का प्रमाण = प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा / 2
= 256 / 2
= 128 के अवि.प्रति.का प्रमाण प्रथम गुणहानि के जघन्य वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेद x (एक गुणहानि के स्पर्द्धक + 1) विशेष = प्रथम गुणहानि का विशेष / 2
= 16 / 2
= 8 इसी प्रकार वर्गणा एवं विशेष का प्रमाण आधा-आधा अंतिम गुणहानि के अंतिम स्पर्द्धक की अंतिम वर्गणा तक जानना इस प्रकार पल्य / असं. गुणहानि हो जाये तब एक योगस्थान होता है यह सर्व कथन जघन्य योगस्थान का जानना
प्रथमादि गुणहानि संबंधी 8-8 वर्गणाओं में वर्गों का प्रमाणरूप यंत्र अष्टम 144 72 36 18 9 सप्तम 160 80 40 20 10 षष्ठम 176 88 44 22 11 पंचम 192 96 48 24 12 चतुर्थ 208 104 52 26 13 तृतीय 224 112 56 28 14 द्वितीय 240 120 60 30 15 प्रथम 256 128 64 32 16
अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तऽवरफड्ढयावड्ढी ।
अंतरछक्कं मुच्चा अवरट्ठाणादु उक्कस्सं ॥230॥
अन्वयार्थ : छह अंतरस्थानों को छोड़कर, जघन्य योगस्थान से लेकर उत्कृष्ट योगस्थान पर्यंत सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्द्धकों की वृद्धि क्रम से जानना ।
अंतर को छोड़कर सर्व योगस्थान की प्राप्ति का क्रम सर्व योगस्थान जगतश्रेणी / असं. अंतर 6 जघन्य योगस्थान की प्रथम गुणहानि के जघन्य स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद माने -> J तो उसके अनंतर (दूसरे) योगस्थान की प्रथम गुणहानि के जघन्य स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद = J + (सूच्यंगुल / असं.) तीसरे योगस्थान की प्रथम गुणहानि के जघन्य स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद = J + (सूच्यंगुल / असं.) + (सूच्यंगुल / असं.) चौथे आदि से लेकर उत्कृष्ट योगस्थान के स्पर्द्धक के अविभागप्रतिच्छेद इसी क्रम से (सूच्यंगुल / असं.) अधिक-अधिक जाने

अपूर्व स्पर्द्धक

सरिसायामेणुवरिं सेढिअसंखेज्जभागठाणाणि ।
चडिदेक्केक्कमपुव्वं फड्ढयमिह जायदे चयदो ॥231॥

अन्वयार्थ : समान आयाम के धारण करने वाले सर्वजघन्य योगस्थान के ऊपर चयप्रमाण अर्थात् जगतश्रेणी का असंख्यातवें भाग प्रमाण की उत्तरोत्तर क्रम से वृद्धि करते-करते एक अपूर्व स्पर्द्धक उत्पन्न होता है ।

अपूर्व स्पर्धक प्रथम अपूर्व स्पर्द्धक जघन्य योगस्थान से जगतश्रेणी / असं. स्थान जाने पर दूसरा अपूर्व स्पर्द्धक आगे जगतश्रेणी / असं. स्थान जाने पर तीसरा आदि अपूर्व स्पर्द्धक जगतश्रेणी / असं. स्थान आगे-आगे जाने पर ऐसे जगतश्रेणी / असं. अपूर्व स्पर्द्धक होने पर जघन्य योगस्थान से दोगुणे अविभागप्रतिच्छेद रूप योगस्थान होता है ऐसे जगतश्रेणी / असं. अपूर्व स्पर्द्धक होने पर जघन्य योगस्थान से दोगुणे के भी दोगुणे अविभागप्रतिच्छेद रूप योगस्थान होता है । इसी प्रकार से दोगुणे-दोगुणे अविभागप्रतिच्छेद करते हुए (पल्य के अर्धच्छेद / असं.) x (1/2) होने पर सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के सर्वोत्कृष्ट योगस्थान होता है उत्कृष्ट योगस्थान के अविभागप्रतिच्छेद = जघन्य योगस्थान के अविभागप्रतिच्छेद x (पल्य के अर्धच्छेद / असं.)

84 योगस्थान

एदेसिं ठाणाणं जीवसमासाण अवरवरविसयं ।
चउरासीदिपदेहिं अप्पाबहुगं परूवेमो ॥232॥

अन्वयार्थ : ये जो योगस्थान कहे हैं उनमें चौदह जीवसमासों के जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा तथा (उपपादादिक तीन प्रकार के योगों की अपेक्षा) चौरासी स्थानों में अब अल्पबहुत्व का कथन करते हैं ।

सुहुमगलद्धिजहण्णं तण्णिव्वत्तीजहण्णयं तत्तो ।
लद्धिअपुण्णुक्कस्सं बादरलद्धिस्स अवरमदो ॥233॥
णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु ।
बादरलद्धिस्स वरं बीइंदियलद्धिगजहण्णं ॥234॥
बादरणिव्वत्तिवरं णिव्वत्तिबिइंदियस्स अवरमदो ।
एवं बितिबितितिचतिच चउविमणो होदि चउविमणो ॥235॥
तह य असण्णीसण्णी असण्णिसण्णिस्स सण्णिउववादं ।
सुहुमेइंदियलद्धिग अवरं एयंतवड्ढिस्स ॥236॥
सण्णिस्सुववादवरं णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स ।
एयंतवड्ढिअवरं लद्धिदरे थूलथूले य ॥237॥
तह सुहुमसुहुमजेट्ठं तो बादरबादरे वरं होदि ।
अंतरमवरं लद्धिगसुहुमिदरवरंपि परिणामे ॥238॥
अंतरमुवरीवि पुणो तत्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं ।
एयंतवड्ढिठाणा तसपणलद्धिस्स अवरवरा ॥239॥
लद्धीणिव्वत्तीणं परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ ।
परिणामट्ठाणाओ अंतरअंतरिय उवरुवरिं ॥240॥
एदेसिं ठाणाओ पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा ।
हेट्ठिमगुणहाणिसला अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु ॥241॥

अन्वयार्थ : 1) सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त जीव का जघन्य उपपाद योगस्थान सबसे थोड़ा है, 2) उससे अधिक सूक्ष्म निगोदिया निर्वृत्ति अपर्याप्त जीव का है । 3) उससे अधिक सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट है, 4) उससे अधिक बादर लब्धि अपर्याप्त का जानना ॥233॥

5) उससे अधिक सूक्ष्म निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट है, 6) उससे अधिक बादर निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य है । 7) उससे अधिक बादर लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट है, 8) उससे अधिक अधिक द्वीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य है ॥234॥
9) उससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट है, 10) उससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य अधिक जानना । इसी प्रकार 11) द्वीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट, 12) त्रीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य, 13) द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट, 14) त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य, 15) त्रीन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट, 16) चतुरिन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य, 17) त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट, 18) चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य, 19) चतुरिन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट, 20) असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य, 21) चतुरिन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट और 22) असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य क्रम से अधिक-अधिक जानना ॥235॥
23) उससे असंज्ञी लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट, 24) उससे संज्ञी लब्धि अपर्याप्त का जघन्य, 25) उससे असंज्ञी निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट, 26) उससे संज्ञी निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य, 27) उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान अधिक है । और 28) उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान अधिक जानना ॥236॥
29) उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान अधिक है, 30) उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान अधिक है, 31) उससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त का और 32) बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त का जघन्य अधिक-अधिक है ॥237॥
33) उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त और 34) सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त के उत्कृष्ट अधिक हैं । 35) उससे बादर एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त और 36) बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्ति अपर्याप्त के उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान अधिक हैं । उसके बाद अंतर है । इन स्थानों को उलंघकर 37) सूक्ष्म एकेन्द्रिय और 38) बादर एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त के जघन्य और 39) सूक्ष्म एकेन्द्रिय और 40) बादर एकेन्द्रिय लब्धि अपर्याप्त के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अधिक जानने ॥238॥
इसके ऊपर दूसरा अंतर है । अंतर के पश्चात् 41) से 44) सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तों के जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान हैं । फिर तीसरा अंतर है । 45) से 54)अंतर के पश्चात् पाँच त्रसों के लब्धि अपर्याप्त के जघन्य और उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान हैं ॥239॥
इसके आगे चौथा अंतर है । इसके बाद लब्धि अपर्याप्त और निर्वृत्ति अपर्याप्त पाँच त्रसजीवों के 55) से 64) परिणाम योगस्थान, 65) से 74) एकांतानुवृद्धि योगस्थान और 75) से 84) परिणाम योगस्थान तथा इनके ऊपर बीच-बीच में अंतर सहित स्थान हैं । ये तीनों स्थान उत्कृष्ट और जघन्यपने को लिये हुए हैं । (इस तरह योगों के 84 स्थान कहे हैं) ॥240॥
ये 84 स्थान क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे हैं । (और जघन्य तथा उत्कृष्ट योगस्थानों के बीच की जो) अधस्तन गुणहानि शलाकाएँ हैं (वे असंख्यात से हीन पल्य की वर्गशलाका प्रमाण है) । उसीको अन्योन्याभ्यस्तराशि (की गुणकार शलाका) कहते हैं ॥241॥
84 योगस्थान 1 से 27 28 29 30 से 36 37 से 44 45 से 54 55 से 64 65 से 74 75 से 84 उपपाद योग एकांतानुवृद्धि योग परिणाम योग

योगस्थान का निरंतर प्रवर्तन काल

अवरुक्कस्सेण हवे उववादेयंतवड्ढिठाणाणं ।
एक्कसमयं हवे पुण इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति ॥242॥
अन्वयार्थ : उपपाद योगस्थान और एकांतानुवृद्धि योगस्थानों के प्रवर्तने का काल जघन्य और उत्कृष्ट एक समय ही है । और इन दोनों से भिन्न जो परिणाम योगस्थान हैं उसके किसी एक भेद के निरंतर प्रवर्तने का काल दो समय से लेकर आठ समय तक है ।
योगस्थान निरंतर प्रवर्तन काल कारण जघन्य उत्कृष्ट उपपाद एक समय जन्म के प्रथम समय में ही होता है एकांतानुवृद्धि प्रति समय वृद्धिरूप अन्य-अन्य ही होता है परिणाम दो समय आठ समय

योग में काल

अट्ठसमयस्स थोवा उभयदिसासुवि असंखसंगुणिदा ।
चउसमयोत्ति तहेव य उवरिं तिदुसमयजोग्गाओ ॥243॥

अन्वयार्थ : आठ समय निरंतर प्रवर्तने वाले योगस्थान सबसे थोड़े हैं । और सात को आदि लेकर चार समय तक प्रवर्तने वाले ऊपर-नीचे के दोनों जगह के स्थान असंख्यातगुणे हैं । किंतु तीन समय और दो समय तक प्रवर्तने वाले योगस्थान ऊपर ही की तरफ रहते हैं । और उनका प्रमाण भी क्रम से असंख्यातगुणा है । (इन समयों की रचना करने पर जौ का आकार बन जाता है) ।

योगस्थानों में त्रस जीवों का प्रमाण

मज्झे जीवा बहुगा उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता ।
हेट्ठिमगुणहाणिसलादुवरि सलागा विसेसऽहिया ॥244॥
दव्वतियं हेट्ठवरिमदलवारा दुगुणमुभयमण्णोण्णं ।
जीवजवे चोससयबावीसं होदि बत्तीसं ॥245॥
चत्तारि तिण्णि कमसो पण अड अट्ठं तदो य बत्तीसं ।
किंचूणतिगुणहाणिविभजिदे दव्वे दु जवमज्झं ॥246॥(जुम्मं)

अन्वयार्थ : पर्याप्त त्रसजीवों के प्रमाणरूप (जौ की रचना के) मध्यभाग में जीव बहुत हैं । ऊपर और नीचे दोनों तरफ क्रम से यथायोग्य प्रमाण से हीन-हीन होते हैं । तथा नीचे की गुणहानि शलाका से ऊपर की गुणहानि शलाका का प्रमाण कुछ अधिक है ।
(कल्पना कीजिये कि) द्रव्यादि तीन का **अर्थ**ात् यव के आकार जीवों की संख्या (द्रव्य)का, योगस्थान (स्थिति) का तथा गुणहानि आयाम का प्रमाण क्रम से 1422, 32 तथा 4 है । और नीचे तथा ऊपर की नाना गुणहानि का प्रमाण क्रम से 3 तथा 5 है । सब मिलकर द्विगुण अर्थात् दोनों गुणहानि का प्रमाण 8 हुआ । तथा नीचे और ऊपर की दोनों अन्योन्याभ्यस्त राशियों का प्रमाण क्रम से 8 तथा 32 होता है । यहाँ पर कुछ कम तिगुनी गुणहानि (12-) का (711/64) भाग द्रव्य (1422) में देने से जीव-यवाकार के मध्य की जीवसंख्या 128 निकलती है ऐसा जानना ।
अंक संदृष्टि द्वारा द्रव्यादि का प्रमाण द्रव्य = त्रस पर्याप्त जीवों का प्रमाण
= 1422 स्थिति = त्रस पर्याप्त जीवों संबंधी परिणाम योगस्थान
= 32 एक गुणहानि आयाम = स्थानों का प्रमाण
= 4 सर्व गुणहानि = 8 नीचे की नाना गुणहानि = 3 ऊपर की नाना गुणहानि = 5 अन्योन्याभ्यस्त राशि - नीचे की = 2 ^ नाना गुणहानि
= 2 ^ 3
= 8 - ऊपर की = 2 ^ नाना गुणहानि
= 2 ^ 5
= 32 मध्य में जीवों का प्रमाण (ऊपर की गुणहानि का प्रथम निषेक) = (सर्व द्रव्य / कुछ कम तीन गुणा गुणहानि)
= 1422 / [(3 x 4) - (57 / 64)]
= 128 ऊपर की प्रथम गुणहानि में चय का प्रमाण = प्रथम निषेक / दो गुणा गुणहानि आयाम
= 128 / (2 x 4)
= 16 आगे-आगे निषेक का प्रमाण = पूर्व पूर्व निषेक - चय अंतिम निषेक = प्रथम निषेक - (गुणहानि आयाम - 1) x चय सर्व निषेकों का प्रमाण, प्रत्येक गुणहानि के चय का और गुणहानि का सर्व धन यव रचना में देखें नीचे की गुणहानि का प्रथम निषेक = ऊपर की गुणहानि का प्रथम निषेक-चय
= 128 - 16
= 112 नीचे की प्रथम गुणहानि में चय का प्रमाण = 16 आगे की गुणहानि में निषेक और चय का प्रमाण = आधा-आधा जानना (यव रचना देखें) प्रत्येक निषेक = योगस्ठान निषेक का प्रमाण = उस-उस योगस्थान में जीवों का प्रमाण